महामुनिदुर्वाससाविरचितम्

श्री त्रिपुरामहिम्नस्तोत्रम्

हिन्दीव्याख्यासहितम्

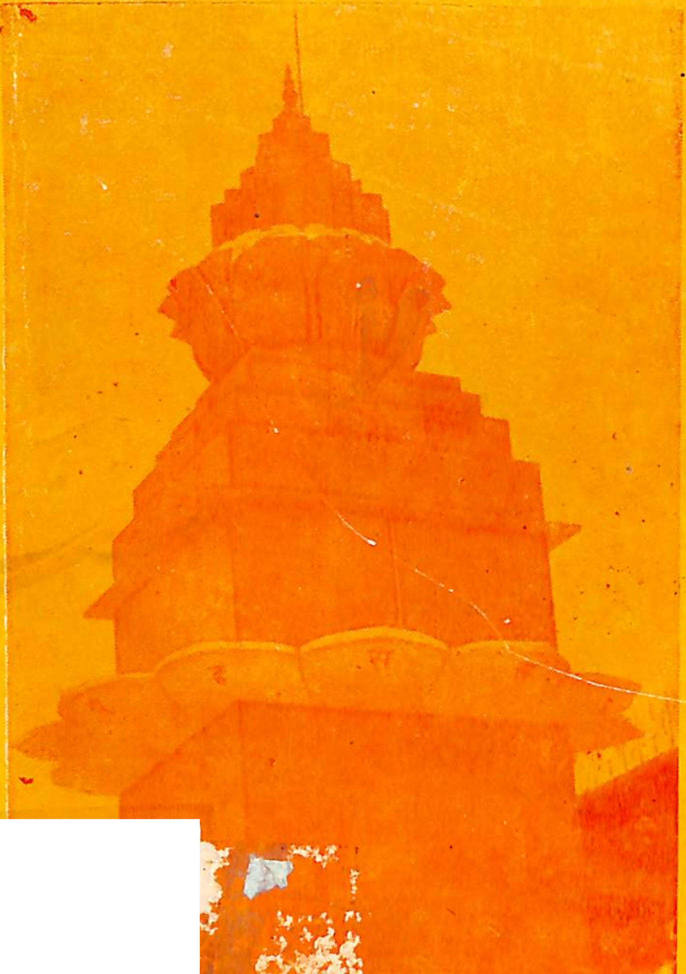

([illegible] श्री [illegible] मंदिरम्, मणिपुर धाम)

प्रकाशक :

श्री पीताम्बरा पीठ-परिषद्, दतिया

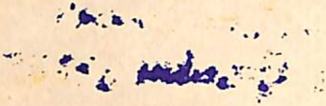

1936
ST-7

महामुनिदुर्वाससाविरचितम्

श्रीत्रिपुरामहिम्नस्तोत्रम्

हिन्दीव्याख्यासहितम्

व्याख्याकार

राजगुरु कुलमार्तण्ड स्व. पंडित योगीन्द्र कृष्ण दौर्गादत्ति शास्त्री

प्रकाशक

श्री पीताम्बरा-पीठ संस्कृत परिषद्,

दतिया (म० प्र०)

प्रकाशक :
श्री पीताम्बरा-पीठ संस्कृत परिषद्, दतिया (म० प्र०)

प्रथमावृत्ति—१०००
सम्वत्–२०२६
द्वितीयावृत्ति—२०००
सम्वत्–२०४२
(सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन)

मूल्य नौ रुपया मात्र

मुद्रक :
उमाशंकर मिश्र
श्रीशंकर प्रेस
३६-३७, खत्रयाना, झांसी (उ०प्र०)

श्री १००८ पूज्यपाद श्री स्वामीजी महाराज
(ब्रह्मलीन)

किञ्चिद् वक्तव्य

स्तोत्र साहित्य में महिम्न स्तोत्रों का एक प्रमुख स्थान है। शिव महिम्न स्तोत्र में कहा गया है। महिम्नो ना परास्तुतिः अर्थात् महिम्न से बढ़कर कोई स्तुति नहीं है। यद्यपि यह वाक्य शिव महिम्न स्त्रोत में आया है तथापि शक्ति महिम्न स्तोत्र में भी यह पूर्ण रूप से चरितार्थ होता है। शक्ति महिम्न स्तोत्र महर्षि दुर्वासा-कृत है अनेक देशीय भाषाओं में इसकी टीकायें उपलब्ध होती हैं। संस्कृत में साधक प्रवर श्री नित्यानन्द नाथ कृत एक संक्षिप्त व सार गर्भित व्याख्या है। गुजराती भाषा में भी एक टीका देखने को मिली है। अद्यावधि राष्ट्रभाषा हिन्दी में इसकी कोई टीका देखने में नहीं आई। राजगुरु कुल मार्तण्ड पंडित योगीन्द्र कृष्ण दौर्गादत्ति शास्त्री जी ने गम्भीर व पाँडित्य पूर्ण व्याख्या करके इस कमी को पूरा करने का सर्व प्रथम प्रयास किया है एतदर्थ शास्त्री जी सर्वथा धन्यवाद के पात्र हैं। मूल स्तोत्र में श्री विद्या साधना की प्रायः सभी बातें संकेत रूप में आई हैं, उनका स्पष्टार्थ इस व्याख्या द्वारा होने से व्याख्या और अधिक उपयोगी हो गई है। आशा है साधक गण इसे अपना कर अपनी साधना का मार्ग प्रशस्त करेंगे।

श्री स्वामी जी महाराज

पीताम्बरा-पीठ, दतिया
चैत्र शुक्ल नवमी
वि० सं० २०२६

प्रकाशकीय

त्रिपुरामहिम्न स्तोत्र का यह द्वितीय संस्करण साधकों के लाभार्थ प्रकाशित किया जा रहा है। यह ग्रन्थ श्री विद्या की साधना की प्रामाणिक जानकारी देता है। श्री विद्या विषयक जो ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं उनमें इस स्तोत्र ग्रन्थ का अपना वैशिष्टय है। इसका हिन्दी अनुवाद स्वर्गीय योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति शास्त्री जी ने किया है। अनुवाद में साधकों के लाभार्थ साधना विषय को स्पष्ट करने का सफल प्रयास किया गया है। श्री शास्त्री जी श्री विद्या के विशिष्ट साधक रहे हैं। उन्होंने अपनी कुल परम्परा एवं स्वयं के अनुभव से जो ज्ञान प्राप्त किया उससे यह ग्रन्थ उपयोगी हो गया है।

ग्रन्थ के प्रकाशन में पीठ के ही साधक श्री मोतीलाल मास्टर जी ने जो परिश्रम पूर्वक अपने कर्त्तव्य का निर्वाह किया है तदर्थ उनको साधुवाद देता हूं। श्री हरीराम सावला (कोषाध्यक्ष) ने भी इसके प्रकाशन में सहयोग दिया है। आशा है इस ग्रन्थ के द्वितीय संस्करण से साधकों की मांग की पूर्ति हो सकेगी।

वसन्त पंचमी
२०४२
१३–२–१९८६

विनीत
ललिताप्रसाद शास्त्री
मन्त्री
श्री पीताम्बरा-पीठ संस्कृत परिषद, दतिया

राजगुरु कुलमार्तण्ड स्वर्गीय पण्डित योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति शास्त्री

भूमिका

तत्त्वान्वेषी आचार्यों ने परम तत्त्व का साक्षात्कार विभिन्न रूपों में किया है भौतिक वादियों ने भौतिक एवं आध्यात्मिकों ने आध्यात्मिक जिस तत्त्व को समझा। सन्देह वादियों ने सन्देह और अज्ञेय वादियों ने अज्ञेय में जिसकी परिसमाप्ति की। जो जैनों का अर्हन्त् बौद्धों का शून्य, मीमांसकों का कर्म, वेदान्तियों का ब्रह्म, वैष्णवों का विष्णु और शैवों का शिव हैं। योगियों ने जिसका दर्शन समाधि में किया। उपनिषदों ने जिसे नेतिनेति और वेदों ने एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति की उक्ति से जिसका निर्वचन किया उसी परम तत्त्व का साक्षात्कार शाक्त मत में दशविभिन्न रूपों में किया जाता है जिन्हें काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता धूमावती, वगला मुखी, मातङ्गी और कमला कहते हैं। परमतत्त्व के ये दश रूप दश महाविद्याओं के नाम से व्यवहृत होते हैं। प्रस्तुत विषय का सम्बन्ध षोडशी महाविद्या से है। त्रिविधात्मक संसार के आविर्भाव और तिरोभाव की भूमि त्रिपुरा होने से इन्हें महात्रिपुर सुन्दरी भी कहा जाता है। दश महाविद्याओं के अन्तर्गत एवं इनसे परे भी इनकी गणना की जाती है, अतएव इन्हें पराविद्या भी कहते हैं। महामुनि दुर्वासा जी ने संस्कृत के विभिन्न छप्पन छन्दों में पराम्बा त्रिपुरा भगवती की स्तुति की है जो त्रिपुरामहिम्न स्तोत्र के नाम से प्रसिद्ध है। प्रकृत स्तोत्र पराम्बा भगवती का केवल स्तवन ही नहीं है इसमें श्रीविद्योपासना के सूक्ष्मतर रहस्यों का वर्णन भी

हुआ है। किन्हीं प्रतियों में अट्ठारह श्लोक प्रकाशित हुए हैं पाठ भेद भी प्रायः पाया जाता है। महामुनि दुर्वासा जी के विषय में भागवत, पुराण, महाभारतादि ग्रन्थों में पर्याप्त सामग्री बिखरी पड़ी है। आप सती अनुसुइया जी के गर्भ से उत्पन्न अत्रि ऋषि के पुत्र व भगवदवतार दत्तात्रेय जी के सहोदर भ्राता थे। इनको रुद्रावतार भी माना जाता है। इनका आश्रम बिहार प्रान्त में भागलपुर जिले के समीप एक पर्वत पर कहा जाता है। बहुत लोग नैमिषारण्य तीर्थ को भी आपका स्थान मानते हैं। स्वभाव के बड़े क्रोधी थे। आपका एक नाम क्रोध भट्टारक भी है। ये उच्चकोटि के वैदिक व ब्रह्म वेत्ता थे। श्री विद्योपासकों में प्रधान रूप से आपकी गणना की जाती है। वर और शाप देने में आप सिद्ध हस्त थे।

त्रिपुरा महिम्न स्तोत्र के प्रथम श्लोक में भगवती त्रिपुराम्बा के सूक्ष्मत्तर स्वरूप का ध्यान किया गया है। इसी श्लोक की टीका में विद्वान् टीकाकार ने त्रिपुरा शब्द की विस्तृत व्याख्या की है एवं 'त्रिपुरा' शब्द के अनेक संभावित अर्थों को एकत्र करने का स्तुत्य प्रयास किया है। द्वितीय श्लोक में वर्णमाला स्वरूपिणी माता त्रिपुराम्बा भगवती का ध्यान मूलाधार चक्र में स्थित बिन्दुरूप स्वयं भूलिङ्ग को यही कुण्डलिनी शक्ति सर्पिणी के समान साढ़े तीन फेरों में घेर कर सोई रहती है। कुण्डलिनी शक्ति की यही सुप्तावस्था जीव की अज्ञानावस्था है। हठयोग की क्रियाओं के अभ्यास से इसे

जाग्रत किया जाता है। शक्ति उपासना में इसका जागरण मन्त्र शक्ति से सम्पन्न होता है मूलाधार से कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होकर, षट चक्रों का भेदन करती हुई सहस्त्रार में शिव के साथ ऐक्य स्थापन कर अमृत वृष्टि करती है एवं पुनः मूलाधार में आकर सो जाती है। यह आरोह क्रम कहलाता है। यही कौलमत है। इसके विपरीत श्रौत मत हैं। श्रौतमत के अनुसार कुण्डलिनी शक्ति का ध्यान सहस्त्रार में किया जाता है। इस मत में सहस्त्रार को ही मूलाधार माना जाता है। इसे अकुल कुण्डलिनी कहते हैं। यह अवरोह क्रम है। इसी को समय मत कहते हैं। तीसरे श्लोक से तेरहवें श्लोक तक त्र्यक्षर मन्त्र का विषय कहा गया है। त्र्यक्षर मन्त्र में तीन बीजाक्षर मन्त्र होते हैं, जिन्हें वाग्भव, कामराज एवं शक्ति बीज कहते हैं। वाग्भव बीज की साधना से सर्वज्ञता, कामराज बीज की उपासना से समस्त लौकिक सिद्धियाँ एवं शक्ति बीज के आराधन से अज्ञान की निवृत्ति एवं ब्रह्मत्व की प्राप्ति होती है। तेरहवें श्लोक में किसी एक बीजाक्षर मन्त्र की उपासना को ही समस्त कार्य सिद्धियों का जनक कहा गया है।

पन्द्रहवें श्लोक से अट्ठाइस श्लोक पर्यन्त अनेक पूर्वपक्षों के समाधान पूर्वक माता त्रिपुर सुन्दरी की विधिवत उपासना की आवश्यकता और उपासना विधि के निरूपण के साथ शाक्तदर्शन के दार्शनिक एवं उपासना सम्बन्धी रहस्यों का विवेचन किया गया है।

शाक्तमत में परम तत्त्व शक्ति स्वरूप है। जगत की उत्पत्ति स्थिति और लय का कारण यही शक्ति तत्त्व है। इच्छा ज्ञान क्रिया युक्त इसका स्वरूप है। यह शक्ति तत्त्व निरपेक्ष एवं स्वतन्त्र है। प्रत्यभिज्ञा-हृदय में इसी तत्त्व को "चिति स्वतंत्रता विश्व सिद्धि हेतुः" कहा गया है। वेदान्त में इसी तत्त्व को सच्चिदानन्द ब्रह्म कहते हैं। अन्तर केवल इतना है कि शाक्त मत में शक्ति तत्त्व प्रधान है और शिव तत्त्व गौण। इसी को शक्ति कारण वाद कहते हैं। परम तत्त्व शिवशक्त्यात्मक है। सृष्टि के पूर्व शिवशक्ति के ऐक्य को महाविन्दु कहते हैं। यही कारण विन्दु है। इसी से समस्त सृष्टि की उत्पत्ति होती है। सर्व प्रथम महाविन्दु से नाद तत्त्व उत्पन्न होता है। नाद तत्त्व से श्वेत बिन्दु रक्त बिन्दु एवं मिश्र बिन्दु उत्पन्न होते हैं। श्वेत विन्दु शिवात्मक, रक्त-विन्दु शक्त्यात्मक, एवं मिश्र बिन्दु उभयात्मक है। इन्हीं तीन बिन्दुओं से समस्त सृष्टि की उत्पत्ति होती है। प्रकृत स्तोत्र के अट्ठारहवें श्लोक में काम बीज से ही समस्त सृष्टि की उत्पत्ति के विषय का निरूपण किया गया है। काम बीज श्वेत, रक्त एवं मिश्र बिन्दु स्वरूप है। इसी काम बीज से समस्त सृष्टि की उत्पत्ति हुई है। शाक्त मत में समस्त सृष्टि शब्द और अर्थमय मानी जाती है। शाक्त मत में इन्हें शब्दाध्व और अर्थाध्व कहते हैं। नाद तत्त्व की सर्व प्रथम अभिव्यक्ति मूलाधार में होती है। मूलाधार में अभिव्यक्त शब्द ब्रह्म को परावाणी कहते हैं। यही परावाणी स्वाधिष्ठान में पश्यंती, हृदय में मध्यमा और

कण्ठ में वैरवरी बन जाती है। इस प्रकार नाद तत्त्व से ही समस्त वर्णों की उत्पत्ति होती है "नादः सर्ववर्णोत्पत्तेर्हेतुः"। वर्णमाला की उत्पत्ति का यही रहस्य है। इसी को शब्द सृष्टि कहते हैं। वर्णमाला में अकार शिव तत्त्व का और हकार शक्ति तत्त्व का बोधक है। अकार को प्रकाश व हकार को विमर्श कहते हैं। अ से ह पर्यन्त समस्त वर्णमाला शिवशक्ति का ही स्वरूप है। मातृकाक्षर रूपिणी भगवती समस्त शब्द और अर्थमय विश्व में अहमाकार रूप से भाषित हो रही हैं इसी तत्त्व का निरूपण सत्ताइसवें श्लोक में किया गया है।

परमतत्त्व का साक्षात्कार पंच कोष विवेक से किया जाता है। पंचकोष विवेक से आत्मज्ञान का विषय तैत्तिरीयोपनिषद में वर्णित है एवं वेदान्त ग्रन्थों में जिसका विस्तृत विवेचन किया गया गया है। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, और आनन्दमय पंचकोष कहे जाते हैं। चार्वाक मतावलम्बी भौतिक वादी दार्शनिक अन्नमय कोष को ही आत्मा मानते हैं। जैन मनोमय,और बौद्ध विज्ञानमय कोष को ही परमतत्त्व का वास्तविक रूप समझते हैं। वेदान्त दर्शन में 'आनन्दमयोभ्यासात्" सूत्र के भाष्य में समस्त शैवशाक्त एवं वैष्णव आचार्यों ने आनन्दमय कोष को ही आत्मा का वास्तविक स्वरूप माना है। सूत्रार्थ की संगति लगाने के लिये सम्भवतः ऐसा हुआ है। वेदान्त दर्शन के शाङ्कर भाष्य में इस विषय पर विस्तृत शास्त्रार्थ के पश्चात् आनंदमय कोष से परे आत्मा का स्वरूप निश्चित किया गया है। तात्पर्य यह कि सगुण ब्रह्मोपासक आचार्यों ने आनंदमय कोष को और निर्गुण ब्रह्म-

वादियों ने आनंदमय कोष से परे आत्मा को माना है। ललिता सहस्त्र नाम के भाष्कर राय कृत भाष्य में मातात्रिपुर सुंदरी के दोनों ही रूप माने गये हैं। इसी तत्त्व का निरूपण इक्कीसवें श्लोक में किया गया है।

मनुष्य जीवन का सर्वोच्चतम लक्ष्य परम तत्त्व की अपरोक्षानुभूति करना है। यही श्रौत मत है। शक्ति उपासना का भी यही उद्देश्य है। वेदांत शास्त्र में तत्त्वमसि आदि महावाक्यों के ज्ञान से परम तत्त्व की अपरोक्षानुभूति होती है एवं शक्ति उपासना में शक्ति बीज मंत्र के साधन से। जिस तत्त्व का बोध 'तत्त्वमसि' महाकाव्य ज्ञान से होता है, उसी तत्त्व का बोध "सच्चितत्त्व मसि" "तदहम्" पद से बाइसवें श्लोक में कराया गया है।

अट्ठाइसवें श्लोक में श्री चक्रराज के मध्य त्रिकोण में स्थित बिन्दु चक्र के ऊपर पंच महाशव के आसन पर आरूढ़ ब्रह्मविद्या के रूप में भगवती त्रिपुराम्बा का ध्यान किया गया है। इसी श्लोक में श्री चक्र को संसार चक्रात्मक कहा गया है। जिन मंत्राक्षरों से श्री चक्र का विस्तार हुआ है, उन्हीं से संसार चक्र का भी। मंत्र और यंत्र में भी एकात्मकताहै। शब्द सृष्टि में यंत्र मातृकामय है व अर्थ सृष्टि में विश्वमय। भावनोपनिषद् में श्री चक्र की शरीर चक्र से एकात्मकता सिद्ध की गई है। शक्ति उपासना का अंतिम मंतव्य अद्वैतबोध है। इसीलिये यंत्र मंत्र और देवता में भेद बुद्धि नहीं की जाती "यो नानापश्यति स मृत्युमाप्नोति" तीसवें श्लोक से व्यालीस श्लोक पर्यन्त भगवती का नख शिख वर्णन एवं इकतालीस से

पैंतालीस श्लोक तक भगवती के आयुधों की महिमा का वर्णन किया गया है। त्रैलोक्य जननी माता त्रिपुर सुंदरी निचले दक्षिण कर में बाण, बायें निचले हाथ में धनुष, ऊपर के बायें हाथ में पाश एवं दक्षिण कर में अंकुश धारण किये हुये हैं। उपासक का मन ही भगवती का इक्षु धनु है। मन इक्षु धनुः शब्द स्पर्श, रूप, रस और गंध ही पंच पुष्पबाण है राग ही पाश है। रागः पाशः। पाश बंधन का हेतु है। लौकिक व्यवहार में पाश की भाँति राग भी बंधन का हेतु होता है। द्वेष को अंकुश कहा गया है। द्वेषोऽङ्कुशः। भगवती के चतुरायुधों का यह आध्यात्मिक रहस्य है।

छयालीसवें श्लोक में न्यास क्रिया का महत्व दर्शाया गया है। न्यास का अर्थ निहित करना होता है। सर्व प्रथम साधक न्यास साधन करके स्थूल मलिन देह में देवत्व की भावना निहित करता है। मलिन जीव से शुद्ध ब्रह्म का ऐक्य असंभव है। आगम शास्त्र का सिद्धांत है "देवो भूत्वादेवं यजेत्"— कितना यौक्तिक विचार है। इसी विषय का विस्तृत विवेचन उपर्युक्त श्लोक की टीका में किया गया है।

सेंतालीसवें श्लोक में फल स्तुति का विषय है। प्रयोजन के बिना कर्म में प्रवृति नहीं होती। भौतिकवादी विचारक भौतिक सुख एवं अध्यात्मवादी आत्मिक सुख को जीवन का प्रयोजन मानते हैं। उपनिषदों में इसे ही प्रेय और श्रेय कहा गया है। परन्तु ये दोनों ही पक्ष एक देशीय हैं। दोनों में ही जीवन की अपूर्णता सन्निहित है। मानव जीवन की उच्चतम उपलब्धि तो समग्र जीवन की पूर्णता में ही सन्निविष्ट है। इन

दोनों में अपूर्व समन्वय शक्ति उपासना में ही देखने को मिलता है। त्रैलोक्य जननी पराम्बा का उपासक समस्त लौकिक ऐश्वर्यों को प्राप्त कर परम तत्त्व का साक्षात्कार करता है। इसी श्लोक में त्रिकालदर्शी स्तोत्रकार ऋषि ने पराम्बा भगवती की उपासना में मनुष्य मात्र का अधिकार स्वीकार किया है। प्रस्तुत प्रसंग में आगम शास्त्र की सामाजिक औदार्य भावना आधुनिक तम है और समाज में वैषम्य एवं विघटन उत्पन्न करने वाली प्रवृत्तियों का सही समाधान है।

त्रिपुरा महिम्न स्तोत्र की प्रकृत हिन्दी व्याख्या आगम शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान कुल मार्तण्य राजगुरु योगीन्द्र कृष्ण दौर्गादत्ति जी शास्त्री द्वारा नित्यानन्द विरचित संस्कृत व्याख्या के आधार पर स्वतन्त्र रूप से की गई है। श्लोकों की व्याख्या में संस्कृत व्याख्या शैली का अनुसरण किया गया है। प्रत्येक श्लोक के भावार्थ के साथ ज्ञान वर्धक टिप्पणियों ने ग्रन्थ को और अधिक उपयोगी बना दिया है। व्याख्या पांडित्य पूर्ण है, जिसका परिचय पाठकों को प्रत्येक स्थल पर मिलेगा।

हिन्दी साहित्य में ऐसे उपयोगी ग्रन्थ के अभाव की सामयिक पूर्ति का सर्व-प्रथम श्रेय श्रद्धेय श्री शास्त्री जी को है। प्रस्तुत व्याख्या न केवल श्री विद्योपासकों एवं जिज्ञासु पाठकों के लिये उपयोगी सिद्ध होगी अपितु हिन्दी साहित्य की भी इससे श्रीवृद्धि होगी।

श्री पीताम्बरा-पीठ, दतिया | **रामेश्वर तिवारी**
चैत्र शुक्ल नवमी २०२६ | एम० ए० (दर्शन, संस्कृत)

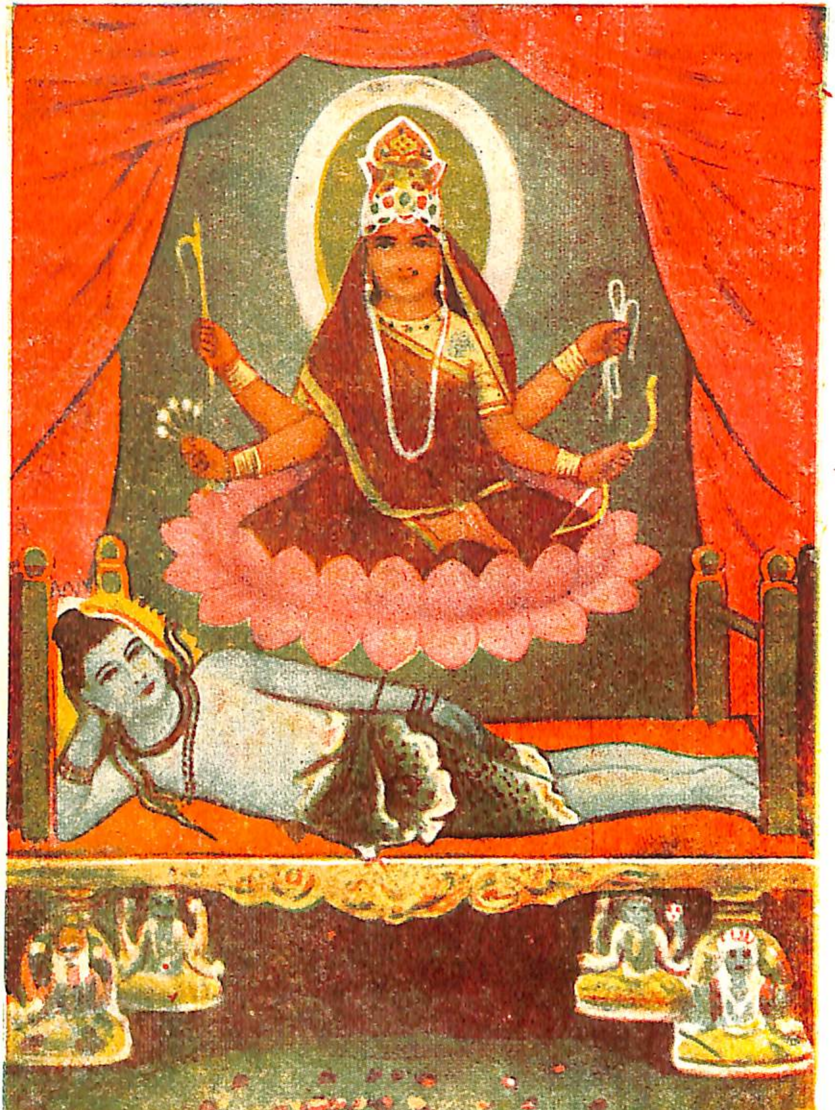

माता
श्री महात्रिपुर सुन्दरी

* नमः परदेवतायै *

"मंगलाऽऽचरणम्"

"एकं सच्चिन्मयं ब्रह्म देवादिपशुयोनिषु ।
दर्शयन्तं स्वरूपेण गुरुं गजमुखं भजे ॥१॥"

'ललितां तुङ्गकुचान्तां, कान्तां कालाङ्कसंस्थितां शान्ताम् ।
कामेश्वरशिवकान्तां कस्तूरीतिलकाङ्कितां वन्दे ॥२॥'

(श्रीपितृपादाः दौर्गादत्तिहरिकृष्णशर्माणः)

प्रकाश-प्रतिभा-ज्ञानानन्दनाथत्रयात्मिकाम् ।
त्रिपुरां त्रिजगद्वन्द्यां श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीम् ॥१॥
ध्यात्वा तदीय–महिमस्तुते दुर्वाससः कृते ।
(१)नित्यानन्दोदयां टीकां सदानन्द-प्रदायिनीम् ॥२॥
अनुसृत्य यथाशक्ति शक्तिभक्तिमतां कृते ।
नागर्यामपि भाषायां व्याख्यां प्रख्यापयाम्यहम् ॥३॥
श्रीमत्प्रताप-पैलेस-संज्ञ-प्रासाद - संस्थितः ।
सम्मानितः श्री६राजेन्द्र-दलजितिंसहभूमिपैः ॥४॥

(कुलकम्)

टिप्पणी (१) नित्यानन्दोदयां नित्यानन्दात् तदाख्याद्विदुषः—
उदयो यस्यास्तां टीकाम् नित्यानन्दकृतामित्यर्थः सदानन्दप्रदायिनीं सतां पण्डितानाम् आनन्ददायिनीम् । "सन् सुधीः कोविदो बुधः" इत्यमरः । तथा सदा सर्वदा पाठकेभ्यः आनन्ददात्रीम् ।

: १ :

श्रीमातस्त्रिपुरे परात्परतरे देवि त्रिलोकीमहा-
सौन्दर्यार्णवमन्थनोद्भवसुधाप्राचुर्यवर्णोज्ज्वलम् ।
उद्यद्भानुसहस्रनूतनजपापुष्पप्रभ ते वपुः स्वान्ते
मे स्फुरतु त्रिलोकनिलयं ज्योतिर्मयंवाङ्मयम् ।

पुराण-प्रसिद्ध श्री भगवान् दत्तात्रेय के सहोदर भ्राता, महात्मा अत्रि ऋषि और श्रीमती सती अनुसूया के तनुज, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी के परमोपासक, सुगृहीतनामा श्रीदुर्वासामुनिविरचित श्रीत्रिपुरा महिमस्तोत्र की श्रीनित्यानन्द विरचित संस्कृत टीका के आधार पर हिन्दी भाषा में व्याख्या—

हे परात्परतरे सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप वाली हे माता त्रिपुर सुन्दरी (त्रिपुरा=तीन-तीन वस्तुओं का समूह जिसका स्वरूप है) हे देवि। दिव्य क्रीड़ा में तत्पर। उक्त चारों पद श्री भगवती के सम्बोधन हैं। त्रिलोकी महा० तीनों लोकों (स्वर्ग, मर्त्य और पाताल) के सौन्दर्य रूप महा समुद्र के मन्थन से उत्पन्न अमृत के समान अत्यन्त उज्ज्वल—उद्यद्भानु=०उगते हुये हजारों प्रातःकालीन लाल सूर्यों तथा सूर्योदय से पूर्व विकसित (खिले हुये) जपा पुष्पों के समान रक्तवर्ण कान्तिमान। त्रिलोकनिलयं=तीनों लोक जिसकी छाया में निमग्न हो जाते हैं, अथवा जो त्रिलोकी का उत्पत्ति स्थान काम-कला रूप है, ज्योतिर्मयं=तेजोमय अर्थात् सूर्य अग्नि और चन्द्रमा के तेज से संयुक्त, वाङ्मयं=वाणी रूप

(परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी स्वरूप) ते वपुः= तुम्हारा स्वरूप (शरीर), स्वान्ते=मेरे हृदय में, स्फुरतु= स्फुरित होवे अर्थात् भावना गोचर होवे, मेरे मन की भावना में प्रकट होवे।

संक्षेप में पद्य का अर्थ सरल रूप में निम्न प्रकार से होगा।

हे सूक्ष्म स्वरूप वाली त्रिपुर सुन्दरी भगवती तीनों लोकों के सौन्दर्यरूपी महा समुद्र के मन्थन से उत्पन्न अमृत के समान उज्ज्वल (शुभ्र) सहस्रों प्रातःकालीन सूर्य तथा सद्यः खिले हुए जपा पुष्पों के समान लाल रङ्ग वाला त्रिलोकी का उत्पत्ति स्थान (पैदा करने वाला) प्रकाशमय और चतुर्विध वाणी स्वरूप तुम्हारी मूर्ति मेरे हृदय में स्फुरित हो अर्थात् मेरे मन में विराजे।

पदकृत्य

त्रिलोकी—इस पद से वाला त्रिपुर सुन्दरी के त्र्यक्षरी मन्त्र के प्रथम कूट की, तथा उद्यद्भानु०—इस विशेषण से कामराज कूट की (द्वितीय कूट की) भावना का प्रतिपादन किया गया है। त्रिलोकनिलयं [त्रिलोकी का उत्पत्ति स्थान] इससे वामकेश्वर तन्त्र में कामकलाक्षर से ही संसार की उत्पत्ति दर्शाई है, इसका विवरण आगे आने वाले छठे श्लोक में कामराज कूट के प्रभाव के अन्तर्गत किया जायेगा। ज्योतिर्मयं और वाङ्मयं इन दो विशेषणों से तृतीयकूट की भावना प्रतिपादित की गई है अर्थात् त्र्यक्षरी का तृतीय

कूट भाग्यप्रद होने से ज्योतिर्मय और सारस्वत होने से वाङ्मय रूप है। कहने का सारांश यह है कि महात्रिपुरसुन्दरी के रूप की (त्रिविध) भावना से सौभाग्य प्राप्ति और वाग् सिद्धि प्राप्त होती है।

इस पद्य में श्री विद्या मन्त्र का भी उद्धार किया गया है। तथापि-श्री मातः, श्री=श्री बीज, मा=मायाबीज, अतः इसके उपरान्त त्रिपुरा=बाला विद्या के तीन बीज [द्वितीय, प्रथम, तृतीय] ई=प्रणव, ओंकार, परात्परतरे—परात् मायाबीज से परतरा=लक्ष्मी [श्री बीज] देवि-सम्बोधन, त्रिलोकी=त्रिकूटा [पञ्चदशी के तीन कूट] सौन्दर्य पद से बाला का तृतीय कूट, अर्णबोद्भव० इत्यादि से बाला का वाग्भव बीज सूचित है क्योंकि वह वाक्प्रद है। उद्यद्भानु० इत्यादि पद से बाला के—कामकूट की सम्भावना की जाती है क्योंकि उसका सिन्दूरी रंग होने से वह वश्यप्रद है। तेवपुः से मायाबीज, स्वान्ते=स्वस्या विद्याया अन्ते [मायाबीज के अन्त में] मे—मा—मा+ई गुण सन्धि से मा=श्री बीज, ई शब्द काम कला वाचक है। इस प्रकार महाविद्या श्री षोडशाक्षरी स्वरूप साधक के हृदय में स्फुरित होवे।

टिप्पणी=—श्रीमातस्त्रिपुरे—ये दोपद श्री माता और त्रिपुरा शब्दों के सम्बोधन हैं, और ये दोनों सम्बोधन भगवती के लिये प्रयुक्त हुये हैं। श्री माता का विशेषार्थ लक्ष्मी और सरस्वती को माना है। श्री का (लक्ष्मीका) और सरस्वती का नाम श्री है। व्याड़िकोश ने इस बात को लिखा है, यथा—

"लक्ष्मी सरस्वती धात्रीत्रिवर्गसम्पद्विभूतिशोभासु उपकरणवेष रचनाविद्यासु श्रीविद्ये प्रथिते" इति व्याडिकोश: । अथवा "अभियुक्तानां नाम श्री पदपूर्वकं प्रयुञ्जीत," अर्थात् बड़ों का नाम श्री लगाकर लेना चाहिये । अतएव श्री चक्र, श्री यन्त्र श्री विद्या श्री गुरु, श्री महाराज, श्री कृष्ण, श्री राम और श्री फल इत्यादि कहे जाते हैं ।

त्रिपुरा का विशेषार्थ त्रि = तीन, पुरा = पहिले, अर्थात् ब्रह्म विष्णु और महेश्वर की मूर्तियों से जो पहिले विद्यमान रहती है । "तृमूर्भ्यो मूर्तिभ्य: पुरातनत्वात् त्रिपुरा" । इति । तथाच =

त्रिमूर्ति सर्गाच्च पुराभवत्वात्
त्रयीमयत्वाच्च तथैव देव्या:
लये त्रिलोक्या अपि पूरकत्वात्
प्रायोऽम्बिका या त्रिपुरेति नाम ।।

इसी विषय पर गौड़पादाचार्य का शक्ति सूत्र "तत्वत्रयेण-भिदा" है, अर्थात् एक मात्र ब्रह्म के तीन तत्वों के कारण तीन भेद हो गये हैं । इसके भाष्य में लिखा है कि तत्व शब्द के गुण, मूर्ति, बीज, जगत्, पीठ, और खण्ड आदि बहुत से अर्थ हैं । अत: गुण आदियों से जो पूर्व विद्यमान रहती है ।

त्रिपुरार्णव नामक ग्रन्थ में त्रिपुरा का अर्थ सुषुम्णा पिङ्गला और इडा नाड़ियों का लिखा है तथा पुर का अर्थ मन, बुद्धि और चित्त लिखा है, इनमें निवास करने से त्रिपुरा हुई ।

तथाहि—

नाड़ी त्रयं तु त्रिपुरा सुषुम्ना पिङ्गलात्विडा,
मनो बुद्धिस्तथाचित्तं पुरत्रयमुदाहृतम् ।
तत्र तत्र वसत्येषा तस्मात्तु त्रिपुरामता इति ।

अर्थात् इस महाशक्ति के मण्डल भूपुर, मन्त्र, रूप, कुण्डलिनी शक्ति (अग्नि सूर्य चन्द्र रूप से) ब्रह्मा, विष्णु महेश्वर की सृष्टि के लिये सब बातें तीन तीन हैं अतः यह त्रिपुरा कहाती है। मण्डल त्रिकोण, भूपुर भी तीन रेखाओं वाला मन्त्र भी त्र्यक्षर (तीन अक्षरों वाला) रूपमय—ब्राह्मी रौद्री और वैष्णवी; इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति; वामा, ज्येष्ठा और रौद्री; पश्यन्ती मध्यमा और वैखरी। सिद्धेश्वरी मत में निम्न प्रकार से त्रिपुरा का अर्थ लिखा है।

ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैस्त्रिदेवैरर्चितापुरा ।
त्रिपुरेति तदा नाम कथितं देवतैः पुरा ॥इति॥

सुन्दरी स्तव दूसरे प्रकार से कहता है :—

ब्राह्मी रौद्री वैष्णवीति शक्तयस्तिस्त्र एवहि ।
पुरं शरीरं यस्या सा त्रिपुरेति प्रकीर्तिता ॥इति॥

अर्थात् ब्राह्मी (ब्रह्मा की शक्ति, रौद्री रुद्र की शक्ति, वैष्णवी विष्णु की शक्ति) ये तीनों शक्तियां जिस महाशक्ति त्रिपुरा के शरीर हैं वह त्रिपुरा है। यहां पर पुर का अर्थ शरीर है।

काम कला विलास में और भी स्पष्ट किया है:—तथाहि—

माता मानं मेयं विन्दुत्रयं भिन्नवीजरूपाणि,
धामत्रयपीठत्रयशक्तित्रयभेदवावितान्यपिच ।।१३।।
तेषुक्रमेण लिङ्गत्रयं तद्वच्च मातृकात्रितयम् ।
इत्थं त्रितयपुरीया तुरीयपीठा च भेदिनी विद्या ।।१४।।

अर्थात् मातृ मान और मेय [ईश्वर विद्या और महात्रिपुर सुन्दरी] धामत्रयं=वाग्भव कामराज और शक्तिकूट। विन्दुत्रितयं=रक्त शुक्ल और मिश्र विन्दु। पीठत्रय=पूर्णगिरि पीठ, कामरूप पीठ और जालन्धर पीठ।

शक्तित्रयं=इच्छा शक्ति, ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति। लिङ्गत्रयं=स्वयम्भू लिङ्ग, वाणलिङ्ग और शैल (इतर) लिङ्ग। मातृकात्रितयं=तीनमातृकायें।

इस प्रकार समस्त वस्तुओं की समष्टि रूप त्रिपुरा नाम की पराशक्ति महात्रिपुरसुन्दरी है।

त्रितयपुरीया—त्रितयानि अवयवानि पुराणि शरीराणि यस्याः सा अतएव तुरीयस्य पीठा त्रिविधात्मक सर्व प्रपञ्चाविर्भाव तिरोभाव भूरित्यर्थः।

अर्थात् त्रिविधात्मक [त्रितय मात्र] संसार की सब वस्तुओं की उत्पत्ति और विनाश की भूमि त्रिपुरा [महात्रिपुरसुन्दरी है]।

: २ :

अब मूलाधार चक्र में स्थित सम्पूर्ण विद्या और मन्त्रों की जननी मूलाधार आदि षट्चक्रों को यथाक्रम भेदकर सहस्रदल कमल की कर्णिका के महामध्य त्रिकोणरूपी सिंहासन में विराजमान चिद्रूपिणी शक्ति की स्तुति करते हैं:—

आदिक्षांतसमस्त वर्णसुमणिप्रोते वितानप्रभे
ब्रह्मादि प्रतिमाऽभिकीलितषडाधाराब्जकक्षोन्नते ।
ब्रह्माण्डाब्ज-महासने जननि ते मूर्ति भजे चिन्मयीं
सौषुम्णायत पीत पंकजमहामध्यत्रिकोणस्थिताम् ।।

हे जननि ! हे माता ! मैं [तुम्हारा साधक] आदिक्षान्त॰ अकार से लेकर क्षकार पर्यन्त स्वर और व्यञ्जनात्मक पचास अक्षर रूपी सुन्दर मुक्ताफल [मोती] जिसमें पिरोये हुये हैं, तथा अति उज्ज्वल और अत्यन्त विस्तृत होने से जिसकी शोभा शामियाने [चांदनी] के समान है तथा मूलाधार स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि और आज्ञा चक्रों के ब्रह्मा आदि देवताओं की मूर्तियों से सुशोभित षट् (छः) आधार कमलों के मध्य प्रदेश में [कर्णिकाओं में] उन्नत [उच्च] ब्रह्म रन्ध्र में स्थित सहस्रदल कमल की कर्णिका के मध्यभाग में स्थित महात्रिकोण रूपी आसन के ऊपर विराजमान सुषुम्णा नाड़ी सम्बन्धी विस्तृत पीत कमल [पीले रंग का कमल] के मध्य भाग में स्थित अ, क आदि वर्णों से युक्त त्रिरेखात्मक (तीन रेखाओं वाला) त्रिकोण के मध्य में विन्दु

रूप स्वयम्भू लिङ्ग को साढ़े तीन पैरों से [वलियों सें] घेरकर [वेष्टित कर] सोई हुई सर्पिणी के समान स्थित तुम्हारी चिन्मयी ज्ञानात्मिका कुण्डलिनी रूप मूर्ति का भजन करता हूं।

संक्षेप में उक्त अर्थ निम्न प्रकार से होगा :—हे माता! 'अ' से लेकर 'क्ष' पर्यन्त पचास वर्णों की माला रूप मुक्ता-माला से युक्त अत्यंत शुभ्र चाँदनी [चंदोवा] के समान विस्तृत तथा षडाधार कमलों में स्थित ब्रह्मादि देवताओं की मूर्तियों से उन्नत [ऊंचा] गिरि के ऊपर [भीतर] सहस्त्र दल कमल के आसन में मैं तुम्हारी उस ज्ञानमयी कुण्डलिनी स्वरूप मूर्ति का ध्यान करता हूं। जो कि मूलाधार कमल में सुषुम्णा नाड़ी रूप पीले कमल के मध्यवर्ती अकारादि त्रिकोण में विन्दुरूप स्वयम्भू लिङ्ग को साढ़े तीन कुण्डलों [घेरों] सें घेरकर सर्पिणी के समान सोई हुई है। सर्प सदा घेरा बांधकर सोता है।

ब्रह्माण्ड में सबसे ऊपर सहस्त्रदल-कमल है, सुषुम्णा नाड़ी उसकी [सहस्त्रदल कमल की] नाल रूपिणी है (कमल नाल के समान है) जो कि मूलाधार में स्थित चतुर्दल कमल के मध्य में त्रिकोण रूप कन्द से ऊपर की ओर [सहस्त्रदल कमल की ओर] गयी है, भ्रूमध्य में आज्ञा चक्र से लेकर नीचे की ओर विशुद्धि, अनाहत, मणिपूर, स्वाधिष्ठान और मूलाधार चक्र [कमल] है तथा सबसे ब्रह्मरन्ध्र में सहस्त्रदल कमल है।

मातृका के [वर्णमाला के] स्थूल पचास वर्णों के कारण स्वरूप सूक्ष्मवर्ण प्रत्येक मनुष्य के शरीर में प्राण पड़ने की अवधि से लेकर प्राणों के निकलने तक जीवनकाल पर्यन्त मणियों की भांति उपर्युक्त कमलों के दलों में [पंखुड़ियों में] कीलित प्राय हैं अर्थात् जुड़े हुए हैं। साम्प्रदायिक लोग जिस समय अन्तर्माला से स्वेष्ट मंत्र का जप करते हैं। उस समय सुषुम्णा नाड़ी को माला का सूत्र (डोरा) मानकर और आधार कमलों के दलों में स्थित इक्यावन ५१ मातृकाक्षरों में मणियों की भावना कर मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त अकार से क्षकार पर्यन्त मानसिक जपकर पुनः ब्रह्मरन्ध्र से मूलाधार पर्यन्त क्षकार से अकार पर्यन्त जपकर एक सौ की संख्या पूर्ण करते हैं। इस प्रकार जप करने से इष्ट सिद्धि शीघ्र प्राप्त होती है।

जिस समय योगी साधक प्राणायाम द्वारा योगाग्नि से कुण्डलिनी के मुख को संतप्त कर देता है उस समय कुण्डलिनी मूलाधार के अधोगम त्रिकोण से उठकर (जागकर) षडाधार कमलों का भेदन कर योग से सुषुम्णा नाड़ी के रन्ध्र द्वारा सहस्र दल कमल में पहुँच कर भ्रमण करती है। अपने भ्रमण से सहस्र दल कमल के अन्तर्गत चिच्चन्द्र मण्डल से निर्गलित [स्रावित] अमृत विन्दुरूप मातृकाक्षर सुषुम्णा रूप ब्रह्म सूत्र द्वारा तत् तत् (उन, उन) आधार कमलों में स्थित उन उन देवताओं को अमृत से अभिषिक्त करती हुयी, मूलाधार त्रिकोण पर्यन्त लगातार अमृत बर्षाती है। उस

समय (अमृत वर्षा के समय) सहस्त्रदलकमल रूप वितान के [चँदोवा चाँदनी] मध्य में सुषुम्णा नाड़ी रूप ब्रह्मसूत्र ऐसा विदित होता है मानों उसमें मोती पिरोये हुये हैं।

अर्थात् मोतियों की माला हो, अतएव 'आदिक्षान्त समस्त वर्ण सुमणिप्रोते वितान प्रभे' कहा गया है।

इस विषय में वामकेश्वर तन्त्र में और अच्छा प्रकाश डाला है—

"पद्मासनगतः स्वस्थो गुदयाकुञ्च्य साधकः
वायुमूर्ध्वगति कुर्वन् कुम्भकाविष्टमानसः ।।
वाय्वाघातवशादग्निः स्वाधिष्ठानगतोज्वलन्,
ज्वलनाघातपवनाघातैरुन्निद्रितोऽहिराट्
रुद्रग्रन्थिं ततो भित्त्वा विष्णुग्रन्थिं भिनत्त्यतः
ब्रह्मग्रन्थिञ्च भित्त्वैव कमलानि भिनत्ति षट्
सहस्त्रकमले शक्तिः शिवेन सह मोदते
साचावस्था पराज्ञेया सैवनिर्वृत्तिकारणम् ।।

अर्थात् पद्मासन में स्थिर होकर गुदाइन्द्रिय का ऊपर को आकुञ्चन करते हुये साधक वायु को ऊर्ध्व गति वाला करता है। कुम्भकाविष्ट मनवाला होने से वायु आघात से स्वाधिष्ठान में रहने वाली अग्नि प्रज्वलित होती है। अग्नि के आघात से कुण्डलिनी शक्ति जाग जाती है, और तीन ग्रन्थि और षट्चक्रों का भेदन कर ब्रह्मरन्ध्र में शिव के साथ आनन्द करती हैं। स्वयं अमृत पान कर तथा अमृत वर्षा कर पुनः अपने स्थान पर आ जाती है।

अब सब प्रकार के शब्द–समूह के प्रकाशक संकेतसार विद्या के आदि कारण बारहवें स्वरूप वाग्भव बीज की वन्दनापूर्वक स्तुति करते हैं।

"वन्दे वाग्भवमैन्दवात्मसदृशं वेदादिविद्यागिरो।
भाषा देशसमुद्भवाः पशुगताश्छन्दांसि सप्तस्वरान्।
तालान्पञ्च महाध्वनीन्प्रकटयत्यात्मप्रसारेण यत्त-
द्बीज पदवाक्यमानजनकं श्रीमातृके ते परम्॥

व्याख्या–

हे मातृके सब प्रकार के शब्दों के समूह की उत्पत्ति कारिणी (पैदा करने वाली, प्रकट करने वाली) हे माता! मैं तुम्हारे ऐन्दवात्म सदृशं, ऐन्दव—इन्दु—चन्द्रमा तत्सम्बन्धी ऐन्दव—चन्द्रसम्बन्धी अर्थात् (चन्द्र मण्डल का) आत्मा जो अमृत उसके समान अर्थात् अमृत जिस प्रकार चन्द्रमा से अमृत का प्रस्रवण (क्षरण) होता है उसी प्रकार वाग्भव बीज से भी अमृत प्राय अक्षरों का प्रस्रवण होता है अतः ऐन्दवा. यह पद वाग्भव का विशेषण है, वाग्भव=वाक् शक्ति पैदा करने वाला बीज बीजाऽक्षर ऐं-कार है। यह बीजाक्षर ऐ-कार ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के प्रथम मन्त्रों के तीन प्रथमाऽक्षरों के मिलने से बना है, तथाहि—"अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्" इत्यादि मन्त्र ऋग्वेद का प्रथम मन्त्र है, "इषेत्वोर्जेत्वा" इत्यादि यजुर्वेद का प्रथम मन्त्र है, तथा "अग्न आयाहि वीतये" इत्यादि सामवेद का प्रथम मन्त्र है। इन तीनों मन्त्रों के प्रथम अक्षर अ, इ, अ, क्रम से है। अ+इ के मिलने से 'आद्गुणः" इस व्याकरण के सूत्र से

अ + इ का ए हो गया। अब 'ए' के पूर्व अग्ने का 'अ' रखने से अ से परे ए होने से "वृद्धिरेचि" इस सूत्र से अ और ए के मिलने से वृद्धि ऐ हो गया। इस प्रकार विन्दु रहित वाग्भव बीज बनता है। यह वाग्भव बीज श्री विद्या मन्त्रों में कादि विद्या के प्रथम कूट का मूल है। इस प्रकार तीनों वेदों के प्रथमाक्षरों से यह वाग्भव बीज बना है।

उक्त प्रकार से बना हुआ यह वाग्भव बीज अथवा वाग्बीज आत्म प्रसारेण अपने विस्तार से [फैलाव से] सब प्रकार के शब्द जाल को [शब्द समूह को] प्रकटयति-प्रकट करता है। तथा, पदवाक्य मान जनकं-जो बीजाक्षर पद. वाक्य और प्रमाणों को उत्पन्न करता है, पद एक अक्षर का भी होता है, और एक से अधिक अक्षरों का भी होता है, अतएव "सुप्तिङन्तंपदम्" इस सूत्र से सुवन्त [संज्ञा] और तिङन्त [क्रिया] दोनों को हीं पद कहते हैं। पदों के समूह को वाक्य कहते हैं, मान = प्रमाण, जोकि प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द भेद से चार प्रकार के होते हैं।

अत: हे वर्णमाला स्वरूपिणी माता भगवती तुम्हारे परं–सर्वोत्कृष्ट (सबसे बढ़कर) वाग्भव बीजाक्षर को प्रणाम करता हूँ।

वाग्भव बीज की उत्कृष्टता को आगे दिखाते हैं कि जो [वाग्भव बीज] अपने अमृत के प्रसार से चार वेद [ऋग, यजु:, साम और अथर्व वेद] चार उपवेद [आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद, स्मृति धर्मशास्त्र–मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, परासर स्मृति, वशिष्ठ स्मृति, अत्रिस्मृति, वृद्ध गौतम स्मृति

आदि स्मृति ग्रन्थ [चौबीस स्मृतियाँ] पुराणअष्टादश [१८] पुराण ग्रन्थ [मत्स्य, मार्कण्डेय, भागवत (देवी भागवत) भविष्य, ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्माण्ड, वराह, वायु, वामन, विष्णु, आदित्य, लिङ्ग, पद्म, अग्नि, कूर्म, स्कन्द और गरुड़पुराण, तथा कालिकापुराण, शिवपुराण आदि उपपुराण भी बहुत हैं।

पुराणों के नाम याद रखने के लिये निम्नलिखित श्लोक है।

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम् ।
अनापलिङ्गकूस्कानि पुराणानि पृथक्-पृथक् ॥

ऊपर १८ पुराणों के नाम इस पद्य के अनुसार लिखे हैं।

आगम मन्त्र और तन्त्रशास्त्र ६४ तन्त्र, आदि में षट्शास्त्र, वेद के ६ अङ्ग शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष, निरुक्त और छन्द, भाषा संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और भूत भाषित पैशाची (पिशाच भाषा) देश समुद्भवाः प्रत्येक देश की अपनी अपनी भाषा, हिन्दी, मराठी, गुजराती, बंगला, मैथिली, कनाड़ी, मलयालम आदि भाषायें आजकल चौदह भाषायें भारत में प्रचलित हैं तथा प्रत्येक मण्डल की भाषा गढ़वाल की गढ़वाली भाषा, कुमायूं की कुमांउनी भाषा नेपाल की नेपाली भाषा आदि भी प्रचलित हैं।

तथा अनेक प्रकार के पशु और पक्षियों की भाषा (बोली) कविता के अनेक प्रकार के-अनुष्टुब इन्द्रवज्रा आदि संस्कृत छन्द, तथा दोहा चौपाई, सवैया, कुण्डलियां आदि भाषा के छन्द तथा सप्त स्वरान् सात स्वरों को गायन शास्त्र के निषाद, ऋषभ, गान्धार, षड्ज, मध्यम और धैवत सात

स्वर (स, रे, ग, म, प, ध, नी) तालान् ध्रुव आदि इन पचास तालों को और पञ्चमहाध्वनीन् दुन्दुभि आदि पाँच प्रकार की ध्वनियों को (शब्दों को) जो प्रकट करता है।

पाँच प्रकार की भिन्न ध्वनि को प्रकट करने वाले बाज निम्न प्रकार हैं:—

(१) वीणा, सरंगी सितार तम्बूरा आदि
(२) मृदङ्ग, ढोलक और मुरज आदि
(३) शंख, बंशी मुरली आदि
(४) झाँझ मँजीरा झल्लरी आदि
(५) ढक्का, भेरी दुन्दुभी नगाड़ा।

इन पाँचों प्रकार के बाजों की ध्वनि भिन्न है।

सरलार्थ :—

संक्षेप में उक्त पद्य का अर्थ निम्न प्रकार से होगा—

हे वर्णमाला स्वरूपिणी! निखिलशब्दजालजननी हे माता अमृत के समान प्रसरणशील [फैलने वाला] तथा ऋग् यजुः, साम वेदों के प्रथमाक्षरों से घटित [उत्पन्न] तुम्हारे उस उत्कृष्ट वाग्भव बीजाक्षर ऐ-कार को मैं प्रणाम करता हूं। जो अपने प्रसार से [फैलाव से] शब्द, पद, वाक्य और चारों प्रमाणों का प्रादुर्भाविक (जनक) तथा चार वेद, चार उपवेद, स्मृति (२४) ६ षट्शास्त्र १८ अष्टादश पुराण, संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश और पिशाच भाषा, तथा देशी भाषायें और उनकी कविता के विविध (अनेक) छन्द, सप्त स्वर, ऊन पचास ताल, पाँच प्रकार की ध्वनियाँ भारत में प्रचलित अनेक भाषाओं तथा नाना प्रकार के पशुओं की भाषा (बोली) को प्रकट करता है।

पूर्व पद्य में संकेतसार विद्या के प्रथम वाग्भव बीज को प्रणाम कर अब श्री बाला त्रिपुर सुन्दरी के प्रथमाक्षर वाग्भव बीज की स्तुति करते हैं—

"त्रैलोक्यस्फुटमन्त्रतन्त्रमहिमां नाप्नोति शश्वद्विना ।
यद्बीजं व्यवहारजालमखिलं नास्त्येव मातस्तव ॥
तज्जाप्यस्मरणप्रसक्तिसुमतिः सर्वज्ञतां प्राप्य कः ।
शब्दब्रह्मनिवासभूतवदनो नेन्द्रादिभिः स्पर्धते ॥"

व्याख्या—

हे माता वागीश्वरी तुम्हारे उस प्रसिद्ध वाग्भव बीज की उपासना किये बिना कोई भी साधक स्वर्ग, मृत्यु और पाताल नाम के तीनों लोकों में सुर, मनुष्य और असुरों के मन को प्रसन्न करने वाले, शाप देने में तथा अनुग्रह करने में समर्थ तन्त्रों की महिमा (सामर्थ्य) को निरन्तर नहीं प्राप्त कर सकता है । तथा तुम्हारे उस वाग्भव बीज की साधना किये बिना सांसारिक तथा पारमार्थिक जितने भी व्यवहार हैं सभी असम्भव होते हैं । अर्थात किसी में भी—मानव सफलता प्राप्त नहीं कर सकता है । और जो साधक तुम्हारे वाग्भव बीज की गुरु द्वारा दीक्षा ग्रहण कर तथा पुरश्चरण द्वारा दीक्षा ग्रहण कर तथा पुरश्चरण द्वारा उसे सिद्ध कर प्रतिदिन जपता है तथा दैनिक जप के अतिरिक्त खाली भ्रमण करने में, और शय्या में निद्रा आने पर्यन्त उसका मन में स्मरण करता रहता है वह [साधक]सुमति[सदबुद्धि वाला]

बन जाता है, अर्थात् उसकी बुद्धि में सब शास्त्रों का स्फुरण हो जाता है, अतएव वह सर्वज्ञता प्राप्त कर लेता है। इतना ही नहीं वरन् उसके मुख में शब्द ब्रह्म अर्थात् सम्पूर्ण वाणियों के हृदय में निवास करने वाली चिच्छक्ति [चेतना शक्ति] निवास करती है, अर्थात् उसका मुख चिच्छक्ति रूप जगदम्बा भगवती त्रिपुरा का मन्दिर बन जाता है।

अतएव हे जननि ! तुम्हारा साधक (भक्त) इन्द्र आदि प्रधान देवताओं के साथ स्पर्धा करने के लिये समर्थ हो जाता है, दूसरे शब्दों में तुम्हारा साधक स्वर्ग में स्थित इन्द्र आदि अष्ट लोकपालों को भी तृणवत् मानता है।

संक्षेप में ऊपर के पद्य का अर्थ निम्न प्रकार से होगा—

हे माता बागीश्वरी तुम्हारे जिस वाग्भव बीज की साधना के बिना संसार के सम्पूर्ण व्यवहार सिद्ध नहीं हो सकते, न स्वर्ग, मृत्यु और पाताल लोक कें निवासी देव दानव और मानवों को प्रसन्न करने वाले मन्त्र और तत्वों की महिमा ही गिनी जा सकती है। ऐसे तुम्हारे (बाला त्रिपुरा के) त्र्यक्षरी मन्त्र के प्रथम अक्षर (वाग्बीज) की नियमानुसार साधना करने से (सिद्ध करने से) सर्वज्ञता को प्राप्त कर तुम्हारा साधक इन्द्र आदि अष्ट लोकपालों के साथ स्पर्धा करने लगता है क्योंकि सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में निवास करने वाली चिति शक्ति (आप) उसके मुख में निवास करती हैं।

: ५ :

पूर्वपद्य में सम्पूर्ण वाग्भव बीज की स्तुति कर अब वाग्भव बीज के ऊपर लगी हुई कुण्डलिनी रूप मात्रा की स्तुति करते हैं :—

मात्रा यात्र विराजतेऽतिविशदा तामष्टधा मातृकां,
शक्तिं कुण्डलिनीं चतुर्विधतनुं यस्तत्वविन्मन्यते ।
सोऽविद्याखिलजन्मकर्मदुरितारण्यं प्रबोधाग्निना,
भस्मीकृत्य विकल्पजालमखिलं मातःपदं तद्व्रजेत् ।।

व्याख्या —

हे माता जननी जो साधक हमारे वाग्भव बीज के ऊपर लगी हुई अत्यन्त विस्पष्ट सामवेद के आदि अक्षर स्वरूप विश्व प्रपंच की मातृ रूपिणी मात्रा को तथा अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग और शवर्ग इन अष्ट वर्गों की स्वामिनी वशिनी कामेश्वरी, मोदिनी, विमला, अरुणा, जयिनी सर्वेश्वरी और कौलिनी युक्त एक पञ्चाशद् वर्णमयी मातृका (वर्णमाला) को और मूलाधार चक्र में निवास करने वाली अग्नि, सोम, सूर्य और इनकी समष्टि रूप चार प्रकार की कुण्डलिनी के (मूलाधार में अग्नि कुण्डलिनी) हृदय में सूर्य कुण्डलिनी, भ्रूमध्य में सोम कुण्डलिनी तथा मूलाधार के अधोगत वाग्भवाकार त्रिकोण में समष्टि कुण्डलिनी) रहस्य को अपने श्री गुरुदेव से दीक्षा ग्रहणकर जान लेता है। अर्थात् भावना करता है वह (साधक) ज्ञान रूपी अग्नि से

अविद्या [सांसारिकी बुद्धि माया] तथा मरणोपरान्त कर्मानुसार प्राप्त होने वाली नाना प्रकार की द्विपद, चतुष्पद और उरग (सर्प) आदि योनियों की तथा अखिल संचित और आरब्ध कर्मों के कानन (जङ्गल) को और अनेक प्रकार की वासनाओं को (इच्छाओं को) भस्म कर तुम्हारे उस अनिर्वचनीय परम पद को प्राप्त होता है।

संक्षेप में उक्त पद्य का अर्थ निम्न प्रकार से होगा।

हे माता जो साधक तुम्हारे वाग्भव बीज के ऊपर लगी हुई विस्पष्ट मात्रा को जो कि आठ प्रकार की अ, क, च, ट, त, प, य, श, वर्गों वाली मातृका रूपा है तथा सृष्टि स्थिति और संहारकारिणी चार प्रकार की कुण्डलिनी शक्ति को श्री गुरुदेव से दीक्षित होकर इन दोनों का रहस्य जान लेता हैं (अर्थात् ये दोनों मातृका और कुण्डलिनी शक्ति एक ही है) वह (साधक) अविद्या और नाना प्रकार की योनियों को (मरकर प्राप्त होने वाली) ज्ञान और अज्ञान अवस्था में दिये गये पापों को, तथा नानाविध वासनाओं को ज्ञानाग्नि से भस्म कर तुम्हारे उस अनिर्वचनीय सर्व सम्मत पद को प्राप्त करता है।

परमपद के विषय में कहा गया है:—

एतस्याः परतः परात् परतरं निर्वाणशक्तेः पदं
शैवं शाश्वतमप्रमेयचलं नित्योदितं निर्मलम् ।
तद्विष्णोः पदमित्युदन्ति सुधियः केचित् पदं ब्रह्मणः
केचिद्धं सपदं निरंजनपदं केचिन्निरालम्बनम् ॥

टिप्पणी—

मात्रा यात्र विराजते :—यहां पर मात्रा शब्द से सामवेद का आदि अक्षर अकार लिया जाता है पहिले तृतीय पद्य में वाग्भव बीज की उत्पत्ति ऋग, यजु और सामवेद के प्रथमाक्षरों में दर्शायी गयी है। अतः मात्रा से वाग्बीज के ऊपर लगी हुई बीजाक्षर रूप ऐ कार के ऊपर की मात्रा से है।

अष्टधा मातृका कुण्डलिनी शक्ति—कुण्डलिनी शक्ति से ही मातृकाक्षरों की उत्पत्ति हुई है, इस विषय में शारदा तिलक लिखता है :—

सा प्रसूते कुण्डलिनी शब्दब्रह्ममयी विभुः
शक्तिं ततो ध्वनिस्मरमान्नाद स्मरमान्निरोधिका॥१०८॥
ततोर्द्धेऽन्दु स्मृतो विन्दु स्मरमादासीत् परा ततः।
पश्यन्ती मध्यमावाचि वैखरी शब्द जन्म भूः॥
इच्छाज्ञानक्रियात्माऽसौ तेजोरूपा गुणाम्बिका॥१०९॥

क्रमेणानेन सृजति कुण्डलिनी वर्णमालिकाम्
अकारादि सकारान्तां द्विचत्वारिंशदात्मिकाम्॥११०॥

पञ्चाशद्वार गुणितां पञ्चाशद्वर्ण मालिकाम्।
सूते तद्वर्णताऽभिन्ना कला रुद्रादिकाम् क्रमात्॥१११॥

(शारदातिलक प्रथम पटल)

वामकेश्वर तन्त्रान्तर्गत नित्या षोडशिकार्णव में भी श्री भगवती को वर्णमाला स्वरूपिणी (मातृका स्वरूपिणी) माना गया है।

तथाहि—

अकचादिटतोनद्ध पयशाक्षरवर्गिणीम्

ज्येष्ठाङ्वाहुपादाग्रमध्य स्वान्तनिवासिनीम् ।

अ से अकारादि षोडशं स्वर, तथा क-कवर्ग, च-चवर्ग, ट-टवर्ग, त-तवर्ग से 'उनद्ध' आरम्भ कर प-पवर्ग, य-यवर्ग और श-शवर्ग से जिसके सिरे से लेकर पैरों तक के अङ्ग और हृदय बना हुआ है, उस भगवती मातृका स्वरूपिणी को मैं प्रणाम करता हूं।

बहिर्मातृका का सृष्टिक्रम का ध्यान भी उपर्युक्त बात की पुष्टि करता है—

पञ्चशाल्लिपिभिर्विभक्त मुख दोः यत्संधि वक्षस्थलां,
भास्वन्मौलिनिवद्धचन्द्रशकलामापीनतुङ्गस्तनीम् ।
मुद्रामक्षगुणं सुधाढयकलशं विद्याञ्च हस्ताम्बुजै,
विभ्राणां विशदप्रभां त्रिनयनां वाग्देवतामाश्रये ॥ इति,

लघुस्तवराज में भी लिखा है :—

या मात्रा त्रपुमीलता तनुलसत्तन्तूत्थितिस्पर्द्धिनी,
वाग्वीजे प्रथमे स्थिता तव सदा तां मन्महे ते वयम् ।
शक्तिः कुण्डलिनीति विश्वजननव्यापारवद्धोद्यमा,
ज्ञात्वेत्थं न पुनः स्पृशन्ति जननी गर्भेऽर्भकत्त्वं नराः ॥

इसका सारांश यह है कि जो साधक वाग् बीज में ऊपर कही हुई तन्त्र रूप मात्रा को सब जगत सृष्टि कारक कुण्डलिनी को मानकर उसका एकाग्र मन में ध्यान करता है वह पुनः माता के उदर में नहीं आता है अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करता है ।

अब संकेतसार विद्या के द्वितीयाक्षर को काम बीज के रूप में स्तुति करते हैं ।

तत्ते मध्यमबीजमम्ब कलयाम्यादित्यवर्ण क्रिया-
ज्ञानेच्छादिमनन्तशक्तिविभवव्यक्ति व्यनक्ति स्फुटम् ।
उत्पत्तिस्थितिकल्पकल्पिततनु स्वात्मप्रसारेण य-
त्काम्यंब्रह्महरीश्वरादिविबुधैः कामंक्रियायोजितैः ।।

व्याख्या—

हे माता मैं प्रातःकालीन बाल सूर्य के समान रक्त वर्ण तेजोयुक्त, इच्छा शक्ति, ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति के आदि कारण, तथा संसार की उत्पत्ति, स्थिति, पालन और कल्प संहार के लिए जिसने वामा, ज्येष्ठा और रौद्री प्रधान ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर (रुद्र) को पैदा किया है, तथा जगत की सृष्टि स्थिति और संहार कार्य करने की समर्थता को प्राप्त करने के लिये ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र से तथा अन्य देवताओं से भी जिस तुम्हारे मध्यम बीज की कामना [अभिलाषा] की जाती है तथा जो मध्यम बीज अपने 'स्वात्म प्रसारेण' अपने कामकलाक्षर के आत्मा तीन धाम रूपी तीन विन्दुओं के प्रसार से स्फुरण से उक्त शक्तियों के सामर्थ्य ज्ञान को जो 'व्यनक्ति' प्रकट करता है अर्थात् प्रदान करता है उस बीज की मैं स्तुति करता हूं, तथा कलयामि अर्थात् ईकार को ककार और लकार से युक्त करता हूं ।

ईकार में क और ल अक्षर जोड़ने से और बिन्दु संयुक्त कर बालाजी का मध्यम कामराज बीज बन जाता है।

स्वात्म प्रसारेण–अर्थात् अपने काम कलाक्षर की आत्मा धाम त्रय रूप बिंदुमय रक्त बिन्दु शुक्ल बिंदु और मिश्र बिन्दुओं के स्फुरण से अर्थात् प्रसार से, यहां पर यह केवल उपलक्षण है। काम कलाक्षर त्रितय मात्र वस्तुओं का कारण है, अतएव इच्छा, ज्ञान, क्रिया, सोम, सूर्य, अग्नि, अकार, उकार, मकार, तीन लोक, तीन पीठ, तीन लिङ्ग, तीन काल, तीन वेद, तीन अग्नि, तीन स्वर आदि अब वस्तुयें त्रिविन्दु रूप काम कलाक्षर से ही उत्पन्न हुई हैं। इस बात को आगे आने वाले १९वें पद्य में विस्तृत रूप से वर्णन करेंगे।

ब्रह्म हरीश्वरादि विवुधैः—इस पद में ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि से–इस आदि पद से–इन्द्र, चन्द्र, कुवेर, सूर्य आदि और भी त्रिपुरोपासक लिये गये हैं जो कि निम्नलिखित हैं—

मनुश्चन्द्रःकुबेरश्च लोपामुद्रा च मन्मथः
अगस्तिरग्निः सूर्यश्च इन्द्रः स्कन्दः शिवस्तथा ॥
क्रोध भट्टारकश्चापि दत्तात्रेयो मुनिस्तथा ।
एते प्रसिद्धा जगति त्रिपुराया उपासकाः ॥

अर्थात् मनु, चन्द्रमा, कुबेर लोपामुद्रा [अगस्त्य ऋषि की पत्नी] कामदेव, अग्नि, सूर्य, इन्द्र, स्कन्द [स्वामी कार्तिकेय] शिव, क्रोध, भट्टारक [दुर्वासा मुनि, जिन्होंने यह त्रिपुरा महिम स्तोत्र लिखा है] और दत्तात्रेय मुनि ये सब भगवती

त्रिपुरसुन्दरी के उपासक हैं। दत्तात्रेय और दुर्वासा मुनि अत्रि ऋषि एवं सती अनुसूया जी के पुत्र हैं।

संक्षेप में इस पद्य का सरलार्थ निम्न प्रकार से होगा—

हे माता मैं तुम्हारे प्रातःकाल के सूर्य के समान रक्त वर्ण इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति का आदि कारण तथा सृष्टि स्थिति और संहार के लिये जिसने ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र को पैदा किया तथा संसार के त्रिविध कार्यों को चलाने की क्षमता के लिये जिस बीज की उक्त त्रिदेवों में [ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ने] तथा अन्य देवताओं ने भी अभिलाषा [कामना] की उस मध्यम बीज को मैं प्रणाम करता हूं जो कि अपने प्रसार से [विस्तृत फैलाव से] अपनी अनन्त [जिनका अन्त नहीं है—अर्थात् अगणित] शक्तियों के सामर्थ्यों के ज्ञान को प्रत्यक्ष रूप से प्रकट करना है।

श्री लघुस्तवराज में भी कामराज बीज की महिमा दर्शायी गई है–

यन्नित्ये तव कामराजमपरं मन्त्राक्षरं निष्कलम्।
तत्सारस्वतमित्यवैति विरलः कश्चिद्बुधश्चेद् भुवि॥
आख्यानंप्रतिपर्वसत्यतपसो यत् कीर्त्तयन्तो द्विजाः।
प्रारम्भे प्रणवास्पदप्रणयितां नीत्वोच्चरन्तिस्फुटम्॥४४॥

इस पद्य में 'निष्कलं' का अर्थ 'शुद्ध कोटि प्राप्त' मन्त्राक्षर का विशेषण है। तथा निष्कलं' [निर्गत ककार-लकाराक्षरं] ककार और लकार को अलग करके, तब केवल ईकार रह जाता है। अतएव श्रुति में कहा है "य ईं श्रृणोति अलकं श्रृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्यपन्थाम," ईकार काम कला-क्षर होने से ओंकार के समान मङ्गलार्थक माना गया है।

महामुनि दुर्वासा कामराज बीज के सामर्थ्य का वर्णन करते हुये उसको प्रणाम करते हैं।

**कामान्कारणतां गतानगणितान्कार्यैरनेकैर्मही–
मुख्यैःसर्व मनोगतानधिगतान्मानैरनेकैः स्फुटम् ।
कामक्रोधसुलोभमोहमदमात्सर्यारिषट्कं च य–
द्वीजं भ्राजयति प्रणौमि तदहंते साधु कामेश्वरि ।।७।।**

व्याख्या—

हे कामेश्वरि ! काम्यन्ते अभिलष्यन्ते योगिभिरिति कामा. तेषां ईश्वरी, अथवा कामेश्वर परशिव की रात्रि अथवा काम कूट की अधिदेवता (कामकूट की स्वामिनी) हे त्रिपुर सुन्दरि ? 'कारणतां गतान्' कारणत्व को प्राप्त हुए अर्थात् तत् तत् कार्यों के अनुकूल कारणता को प्राप्त,'अगणितान्' गणना रहित 'अनेकैः' बहुत से 'मही मुख्यैः' पृथ्वी जिनमें मुख्य है पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश, ऐसे 'कार्यैः' कार्यों से 'सर्व मनोगतान्' सम्पूर्ण प्राणियों के चित्त में स्थित और 'अनेकैः मानैः' बहुत से प्रत्यक्षादि प्रमाणों से तथा 'अनेकैः' वेद शास्त्र और पुराणों से 'स्फुटम्' प्रत्यक्षतया 'अधिगतान्' जाने गये 'कामान्' कामनाओं को तथा 'काम, क्रोध, सुलोभ, मोह, मद, मात्सर्यारिषट्कं' अरीणांषट्कं अरिषट्कं छः प्रकार के शत्रुओं के समूह को काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य—ये छहों ज्ञानियों के शत्रु हैं जब तक इन्हें जीता नहीं जाता (अर्थात् इन पर अपना पूर्ण अधिकार नहीं किया जाता) तब तक मनुष्य ज्ञानी अथवा योगी नहीं कहा जाता। किन्तु संसारी बनने के लिये ये छहों अत्यन्त उपयोगी भी हैं। बिना इसके मनुष्य संसार में अपना कार्य नहीं चला सकता।

'यत् बीजं' जो ककार और लकार सहित कामकूट कामबीज काम क्रोधादि दूषणों को भी 'भ्राजयति' भूषण बना देता है 'तत् बीजं' उस काम बीज को मैं साधु अच्छे प्रकार से अर्थात् आदर भाव से 'प्रणौमि' प्रणाम करता हूँ—अर्थात् साष्टाङ्ग प्रणाम करता हूं।

सरलार्थ—

इस पद्य का सरल अर्थ नीचे लिखा जाता है।

हे काम कूटाधीश्वरि हे मातः कामेश्वरि ! तुम्हारा वह काम बीज ब्रह्मादि अनेक देवों के सामर्थ्य का हेतु है जिसके द्वारा प्राणिमात्र की सम्पूर्ण मनः कामनायें पूर्ण होती हैं, चाहे भूमि प्राप्ति हो, स्वर्ण प्राप्ति अथवा धन-धान्यादि प्राप्ति से और यह बात अनेक साधकों ने अपने साधना जन्य अनुभव द्वारा प्राप्त की है जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों द्वारा स्पष्ट है तथा वेद शास्त्र पुराणादिकों में भी जिनका प्रचुर वर्णन प्राप्त होता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य नामक यह छहों ज्ञानियों के शत्रु हैं क्योंकि यह ज्ञान के आवरण हैं परन्तु सांसारिक स्थिति में अत्यन्त उपयोगी हैं अतः इन उपर्युक्त षट् दूषणों को भी आपका कामबीज भूषण के रूप में परिणित कर देता है अतः मैं (दुर्वासा मुनि) तुम्हारे ककार लकार युक्त कामकूट को सादर प्रणाम करता हूं।

टिप्पणी—मद = अज्ञान, अभिमान, अहङ्कार घमंड मद्य (मदिरा) प्रमाद मनोविकार।

मात्सर्य = मत्सर का भाव वाचक शब्द मत्सरता और मात्सर्य = ईर्ष्या, ईर्षा, दूसरों की संपत्ति को देखकर जलना, द्वेष भाव, गर्व, गुमान, क्रोधीपना, उन्मादावस्था, स्वार्थीपना।

मोह = भ्रम, अज्ञान, सांसारिक वस्तुओं पर गाढ़ अनुराग, आसक्ति, वशीभूत होना।

: ८ :

अब सिंहावलोकन न्याय से पुनः संकेत सार विद्या के कामकला रूप मध्यम बीज का अखिल काम पूरकत्व, विशिष्ट ज्ञान प्रकाशकत्व और प्रणवत्व प्रतिपादन करते हैं :–

यद्भक्ताऽखिल काम पूरणचण स्वात्मप्रभावं महा ।
जाड्यध्वांत निवारणैकतरणिज्योतिः प्रबोधप्रदम् ॥
यद्वेदेषु च गीयते श्रुतिमुखं मात्रात्रयेणोमिति ।
श्रीविद्ये तव सर्वराजवशकृत्तत्कामराजं भजे ॥

व्याख्या–

हे श्री विद्ये हे संकेत सार त्रिपुरसुन्दरि मैं आपके त्र्यक्षरी मन्त्र के कामराज संज्ञक उस द्वितीयाक्षर (द्वितीय) बीज का भजन करता हूं जो कि उपासकों के (भक्तों के) सम्पूर्ण मनोरथ सम्पादन करने में अत्यन्त दक्ष (चतुर) तथा जो स्वात्म प्रभाव से अपने काम कला बीज की आत्मा बिन्दुत्रय के प्रसार से (पूर्वोक्त) वामा, ज्येष्ठा और रौद्री से संयुक्त ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र से युक्त हैं तथा महा अज्ञान रूपी अन्धकार के दूर करने में जो सूर्य के समान हैं और जो तत्वज्ञान को निश्चय रूप से प्रदान करता है अर्थात् तत्वज्ञान का दाता तथा जो चतुर्थ स्वर रूप चारों वेदों (ऋग्, यजु, साम और अथर्व) के प्रथम मन्त्रों के आदि में आने वाला है अकार, उकार और मकार इन तीन मात्रा (अक्षर) ओं से

युक्त ओंकार स्वरूप है—अर्थात् चारों वेदों के पाठ करते **समय** जिसका सबसे पूर्व उच्चारण किया जाता है, तथा सम्पूर्ण बीज और राजाओं को भी अपने वश में कर लेता है, अर्थात् सब बड़े-बड़े शक्तिशाली राजा महाराजा (प्रभावशाली पुरुष) वशीभूत हो जाते हैं।

संक्षेप में पद्य का अर्थ इस प्रकार होगा—

हे श्री विद्ये भगवति ! भक्तों की सम्पूर्ण कामना [इच्छाओं] के पूर्ण करने में विख्यात प्रभाव वाले मूर्खतारूपी अन्धकार के निवारण में सूर्य के समान प्रकाशशील तथा तत्वज्ञानोपदेशक, और वेदों के आदिभूत मात्रा त्रय से [अकार उकार मकार से] युक्त ओंकार रूप, निखिल जगत को वश में करने वाले तुम्हारी बाला विद्या को त्र्यक्षरी के द्वितीयाक्षर रूप कामराज बीज का मैं भजन करता हूं।

टिप्पणी:—

मात्रात्रयेण—काम कलाक्षर रक्त, शुक्ल और मिश्र बिन्दुरूप हैं अर्थात् त्रिबिन्दु रूप हैं और ये तीनों बिन्दु सूर्य, चन्द्र और अग्नि रूप हैं तथा सोम सूर्य और अग्नि को सब ही आगमों में (शास्त्रों में। अकार उकार और मकार रूप माना गया है जो कि ओङ्कार के अवयव हैं (अङ्ग हैं) अर्थात् ओंकार अकार उकार और मकार से बना हैं अतः यह त्रिकात्मकता कामकलाक्षर में विश्रान्त होती है अतः कवि का तात्पर्य है कि त्र्यक्षरात्मक प्रणव से (ओंकार से) से भी बिन्दु त्र्यात्मक काम कलाक्षर का ही बोध होता है अर्थात् ओंकार और काम कलाक्षर में भेद नहीं है, दोनों एक ही वस्तु हैं।

श्री विद्ये ! यह सम्बोधन श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी के लिए लिखा गया है, केवल विद्या शब्द से अन्य नौ महाविद्याओं में से किसी भी महाविद्या का ज्ञान हो सकता है, किन्तु श्रीविद्या केवल महात्रिपुर-सुन्दरी ही कही जाती है। मोक्षदात्री केवल श्री विद्या ही है अतएव लिखा है :—

इति मन्त्रेषु बहुधा विद्याया महिमोच्यते।
मोक्षैक हेतु विद्या तु श्रीविद्या नात्र संशयः ।।
न शिल्पादि ज्ञान युक्ते विद्वच्छबदः प्रयुज्यते।
मोक्षैकहेतुर्विद्या सा श्रीविद्यैवन संशयः ।।

(ब्रह्माण्ड पुराण)

: ६ :

अब संकेतसार विद्या के बाला तृतीय बीज का उद्धार कर उसकी कामकला साम्यता, ब्रह्मात्मकता और चिद्रूपता का प्रतिपादन करते हैं :—

यत्ते देवि तृतीयबीजमनलज्वालावलीसंनिभं ।
सर्वाधारतुरीय बीजमपरं ब्रह्माभिधा शब्दितम् ।।
मूर्धन्यान्तविसर्गभूषित महौकारात्मकं तत्परं ।
संविद्रूपमनन्यतुल्यमहिम स्वान्ते ममद्योतताम् ।।

व्याख्या—

हे देवि भगवति जो तुम्हारा तृतीय बीजाक्षर [श्री बाला विद्या का तीसरा बीजाक्षर] अग्नि की प्रचण्ड ज्वालाओं के समान तेजोयुक्त, सम्पूर्ण विश्व का आधार स्वरूप त्रिकोणाकार एकाराक्षर का कारणीभूत तुरीय अक्षर है, जिसको अपर ब्रह्म के नाम से संकेतित करते हैं, (मूर्धन्यान्तविसर्गभूषित-महौकारात्मकम्) मूर्धन्य बिन्दु है अन्त में मस्तक में जिसको अर्थात् विन्दुभूषित तथा विसर्गों से। दो बिन्दुरूप विसर्गों से = दो बिन्दुओं से : सुशोभित महा ओंकार स्वरूप अर्थात् बिन्दु-त्रय युक्त होने से जो महत्वशाली है तथा जिसकी महिमा अतुलनीय है वह तुम्हारा संविद्रूप ज्ञानात्मक उत्कृष्ट पराबीज (बालाजी का तृतीय बीज) मेरे हृदय में प्रकाशित हो अज्ञानान्धकारा वृत्त मेरे चित्त में अपना प्रकाश फैलावे।

इसका संक्षिप्तार्थ निम्न प्रकार से होगा :-

हे देवि ! बाला विद्या स्वरूप तुम्हारा जो तीसरा बीजाक्षर भाग की लपटों के समान तेजोयुक्त सारे जगत का आधार स्वरूप त्रिकोणाकार एकार का कारण अपर ब्रह्म के नाम से प्रसिद्ध बिन्दुत्रय युक्त होने से महान तथा अतुल प्रभावशाली ओंकार स्वरूप ज्ञानात्मक उत्कृष्ट पराबीज है वह मेरे हृदय में प्रकाशित होवे ।

टिप्पणी :—

सर्वाधार तुरीयबीजं—सर्वाधार अर्थात् सम्पूर्ण विश्व का आधार स्वरूप अतएव वामकेश्वर तन्त्रान्तर्गत नित्याषोडशिकार्णव में लिखा है-

"यदेकादशमाधारं बीजं कोणत्रयोद्भवम् ।
ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं जगदद्यापि दृश्यते ।।६।।"

अर्थात् जिस मातृका का एकादश अक्षर का आकार कोण त्रयोद्भव है । नागरी लिपि में एकाराक्षर △ त्रिकोणाकार लिखा जाता है । वह त्रिकोणाकार एकार ब्रह्माण्डादि जगत के प्रति कारण है । सन्धि शास्त्र के ज्ञाताओं से (व्याकरण जानने वालों से) आज भी देखा जाता है । अर्थात् अकार और इकार के मिलने से (सन्धि से) एकार बनता है ।

तथाहि—अकारः परम शिवः तस्य स्त्री ई, "पुंयोगादाख्यायाम्" इति ङीष् तयोः संयोगेन एकार निष्पत्तिः शिवशक्ति समायोगस्यैव जगद्बीजत्वात् तदभेदेन तादृशाक्षरस्यापि तद्बीजत्वम् ।

एवं कादि विद्यायामपि द्वितीयाक्षरस्यैषा स्तुतिः "एतद्वै तदक्षरम्" इत्युक्तश्रुतावपि एकाऽस्तदिति च भिन्नेपदे । तेन तत्राप्यैकारस्यैव सर्व जगदाधारत्वेन स्तुतिः । इतिश्रीभास्कररायोन्नतिसेतुबन्धाख्य व्याख्या ।

अब बाला विद्या के तृतीय बीज को पराशक्ति रूप मानकर प्रणाम करते हैं।

"सर्वः सर्वत एव सर्गसमये कार्येन्द्रियाण्यन्तरा ।
तत्तद्दिव्यहृषीक कर्मभिरियं संव्यश्नुवाना परा ।
वागर्थव्यवहारकारणतनुः शक्तिर्जगद्व्यापिनी ।
यद्बीजात्मकतांगता तव शिवे तन्नौमि बीजंपरम् ॥"

व्याख्या:—

हे शिवे हे कल्याण स्वरूपे मातः 'सर्ग समये' सृष्टि के उत्पादन समय में 'सर्वतः' सर्व संव्यश्नुवानाः एक साथ सब वस्तुओं को उत्पादन कर 'अन्तरा' तदनन्तर 'कर्मेन्द्रियाणि' पाँच कर्मेन्द्रिय और पाँच ज्ञानेन्द्रियों को 'तत्तद्दिव्य हृषीक कर्मभिः' उनके दिव्य शब्दादि और वचनादि कार्यों से संयुक्त कर 'वागर्थ' व्यवहार कारण तनुः' परम उत्कृष्ट शब्द सृष्टि और अर्थ सृष्टि की आदि कारण रूप अर्थात् नाना प्रकार के शब्द और उनके अनेक प्रकार के वाच्यार्थ लक्ष्यार्थ और व्यङ्ग्यार्थों की कारण स्वरूप जगद व्यापिनी (संसार में व्याप्त) अर्थात् कार्य कारण और कर्तृव्य, ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञातृत्व, वाच्य, वचन और वक्तृत्व आदि त्रितयमात्र रूपिणी यह पराशक्ति तुम्हारी बाला विद्या के जिस पराबीज रूपता को अर्थात् सकार औकार और बिन्दुत्रयमय रूप को प्राप्त हुई है मैं [दुर्वासा मुनि] तुम्हारे उस बाला विद्या के पराबीज को प्रणाम करता हूँ।

शास्त्रों में कहा गया है कि यह पराशक्ति सृष्टि के समय रक्त शुक्ल और मिश्रात्मक विन्दुओं से त्रयरूप काम कलाक्षर से प्रकट होकर सर्व जीव जात सर्व वस्तु कदम्ब को यथा तथा उत्पादन कर पीछे ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवताओं की व्यवस्था कर शब्द और शब्दार्थ सृष्टि की कारण स्वरूप वह पराबीज रूप को धारण कर लेती है।

पराशक्ति बीज सकार ओंकार और विसर्गों का समूह है सकार के स का अर्थ वह है [स=वह] विसर्ग का अर्थ हकार है, हकार [अहं=मैं] का पर्याय है, औकार [औ] दोनों का सामरस्य प्रकट करता है अतः पराबीज का तात्पर्य है मैं, वह हूं अर्थात् 'ब्रह्मैवाह' मैं ब्रह्म हूँ।

इस पद्य का सरल अर्थ निम्नलिखित प्रकार होगा :—

हे कल्याणकारिणी ! यह जो पराशक्ति जगत का सृजन पालन एवं संहार करती है वही आपके इस पराबीज के रूप में परिणित है उस पराशक्ति ने सृष्टि के आरम्भकाल में सम्पूर्ण जगत का निर्माण किया है निर्माण के आरम्भ में ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों का निर्माण किया तत्पश्चात् कार्येन्द्रिय अर्थात् इन्द्रिय व्यापार को गति प्रदान की वहीं शक्ति इस चराचर संसार में व्याप्त हैं। अर्थात् सम्पूर्ण विश्व उसी का रूप है उससे भिन्न कुछ नहीं है। उसी के द्वारा वाणी एवं अर्थ तथा उनके व्यवहार को सम्पन्न किया जाता है, जगद्व्यापिनी शब्द से जगत के निर्माण में सभी प्रकार के उपादान उसी पराशक्ति में निहित हैं। इस निर्माण कार्य में उसे दूसरे की अपेक्षा नहीं है। जिसमें पराशक्ति का आविर्भाव

हुआ हैं उस पराबीज को जो सकार ओंकार और त्रिबिन्दु के रूप में है उसे नमस्कार करता हूं। आगम शास्त्रों में भी कहा है कि वही पराशक्ति त्रिबिन्दु रूपी काम कला से प्रकट होकर सम्पूर्ण जगत के रूप में परिणित हो जाती है।

यह श्रीबाला विद्या का पराबीज तृतीय कूट है, जो आनन्द भैरव के मत से बिन्दु वाला है तथा दक्षिणामूर्ति के मत से विसर्ग युक्त है और हयग्रीव के मत से बिन्दु और विसर्ग (दोनों) वाला है। इस प्रकार से बिन्दु त्रय रूपी इस पराबीज की महिमा अनन्त है जिसका वर्णन आगम शास्त्रों में विशद रूप से किया गया है।

टिप्पणी :—

तथाहि—अधरोबिन्दुमानाद्यो (प्रथमबीज)
ब्रह्मेन्द्रस्थः शशीयुतः (द्वितीय बीज)
भृगु सर्गाद्योमनुस्तार्तीयमीरितम्,
भृगुः सकारः, सर्गो विसर्गः, मनुः औ तेन सौः
अन्यत्रतु सबिन्दुरुक्तः।

तदुक्तं सनत्कुमारे—
अष्टमस्य तृतीयन्तु चतुर्दशसमन्वितम्,
दण्डकुण्डलमेतद्धि सारस्वतमुदाहृतम्।
अष्टमाक्षरस्य सकारस्य तृतीयः सकारः चतुर्दश समन्वितम्।
औकारेण युक्तः दण्डः अनुस्वारः कुण्डलः विसर्गः।
तेन सौः तेन सौः।

शारदातिलके द्वितीय भागे अन्यत् सबिन्दु बीजम्।
बीजत्रयविषये श्रीपराविभूतिस्तोत्रम्।
वागर्थयोर्नंनु परस्पर मेलनंयत् सम्मीलितौ

च शिवशक्ति मयौ तथैव।
सृष्टिस्थिति प्रलय भेद मयौभेदहौ।

बीजत्रयात्मवपुषा भक्तः भवतस्त्रिभिन्नौ इति बीजत्रयं ऊद्धर्वाम्नायमतेन वाग्भवकामराजशक्तिबीजत्रयं, श्लोकस्यायमभि प्रायः—

बिन्दुत्रयसमष्टिभूतकामकलाक्षररूपिणी वाग्भव कामराज शक्ति बीजात्मिका महात्रिपुरसुन्दरी प्रादुर्भवति।

शास्त्र वचन प्रमाणम्—

स्वात्मजाः सृष्टि संहाराः स्वरूपत्वेन संस्थिताः।
तादात्म्यमनयोर्नित्यंवह्निदाहकयोरिव ॥

(अभिनवगुप्ताचार्यः)

आवयोर्जगदात्मत्वात् तादात्म्यमावयोरपि।
तादात्म्यादावयोर्नित्यं जगत्प्राणावुभौहिनौ ॥

(वड़वानल तन्त्रम्)

वामकेश्वर तन्त्रे—

"तत्वत्रयविनिर्दिष्टा वर्णशक्तित्रयात्मिका।
वागीश्वरी ज्ञानशक्तिर्वाग्भवे मोक्षदायिनी ॥
कामराजे कामकला कामरूपा त्रयात्मिका।
शक्तिबीज पराशक्तिरिच्छैव शिवरूपिणी ॥
एवं देवी त्र्यक्षरात्मा महात्रिपुरसुन्दरी।
पारम्पर्येण विज्ञाता भवबन्ध विमोचिनी ॥

अर्थात् शिव और शक्ति आपस में वाणी और अर्थ (वागर्थ, के समान मिले हुये हैं। जैसे शब्द और अर्थ एक

दूसरे से अलग नहीं है उसी प्रकार शिव और शक्ति भी एक दूसरे से भिन्न नहीं है। किन्तु सृष्टि, स्थिति और प्रलय की रचना के निमित्त बीजत्रय रूप से वे भिन्न होते हैं अर्थात् कामकलाऽक्षर स्वरूप, त्रिबिन्दु समष्टि रूप वाग्भव कामराज और शक्ति बीजात्मिका ही महात्रिपुरसुन्दरी है।

वाग्भव बीज में (बाला विद्या के प्रथम बीज में–अक्षर में) वागीश्वरी मोक्ष स्वरूपिणी ज्ञान शक्ति रूपा है, कामराज बीज में (द्वितीयाक्षर में) कामकला रूपिणी क्रिया शक्ति स्वरूप है, पराबीज बाला के तीसरे बीज में–अक्षर में) इच्छा शक्ति रूप शिवात्मिका है। अतः ऊपर दिखाये गये तीन बीजाक्षर स्वरूप वाली (त्रिबीजात्मिका) त्रिकूटात्मिका वाग्भव, कामराज और शक्तिबीज स्वरूपिणी महात्रिपुरसुन्दरी की जो गुरु द्वारा जानकर (न कि पुस्तक में देखकर) उपासना करता है वह संसार में आवागमन के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

अतएव लिखा है—

न गुरोः सदृशो दाता न देवः शङ्करोपमः ।
न कौलात् परमोयोगी न विद्या त्रिपुरा परा ।।१।।
न पत्न्याः परमं सौख्यं न वेदात् परमो विधिः ।
न बीजात् परमा सृष्टि र्नविद्या त्रिपुरा परा ।।२।।

अर्थात् गुरु के समान दाता, शिव के समान देवता, कौल से बड़ा योगी, पत्नी से बढ़कर सुख, वेद से बढ़कर अतिरिक्त विधि, बीज के अतिरिक्त सृष्टि और भगवती त्रिपुरसुन्दरी से बढ़कर कोई दूसरा अन्य देवता इस संसार में नहीं है।

अब कवि यह दर्शाता है कि पूर्वोक्त पराबीज के स्मरण सेपर-देवता का साक्षात्कार होता है :—

अग्नीन्दुद्युमणिप्रभञ्जनधरानीराम्बरस्थायिनी
शक्तिर्ब्रह्महरीशवासवमुखामर्त्यासुरात्मस्थिता ।
सृष्टस्थावरजङ्गमस्थितमहाचैतन्य रूपा च या
यद्बीजस्मरणेन सैव भवती प्रादुर्भवत्यम्बिके ।।

व्याख्या—

हे अम्बिके, हे प्रतिपालिके ! (सबका पालन करने वाली) जिस पूर्वोक्त पराबीज के स्मरण करने से (उपासना से) जो शक्ति [भगवती] अग्नि, इन्दु—चन्द्रमा, द्युमणि—सूर्य, प्रभञ्जन—वायु, नीर—जल और अम्बर—आकाश में स्थायी रूप से निवास करने वाली है, अर्थात् जिसकी महाशक्ति से प्रेरित होकर सूर्य, चन्द्र, अग्नि, जल और आकाश अपने-अपने कार्य में सर्वदा तत्पर हैं [अपना-अपना कार्य करते हैं] तथा जो शक्ति [सामर्थ्य] ब्रह्मा सृष्टि का उत्पादन करने वाला, विष्णु जगत् का पालनकर्ता, ईश [रुद्र] संसार का संहर्ता (संहारक) वासव देवताओं का राजा इन्द्र, आदि अमर्त्य देवता [आदि से वरुण कुवेर आदि] और असुर दैत्य, इन सबकी आत्मा में स्थित अर्थात् पूर्वोक्त सबके भीतर सामर्थ्य के रूप में

[शक्तिरूप में] विद्यमान तथा सृष्ट [उत्पन्न किये गये] स्थावर स्थितिशील जो चल नहीं सकते [पर्वत वृक्षादि] जङ्गम चलने वाले [जो चल सकते हैं] मनुष्य, पशु आदि उनके भीतर विद्यमान जो जीवन का मूल [महाचैतन्य] वही जिसका रूप है अर्थात् जड़ और चेतन पदार्थों के भीतर सर्वत्र विद्यमान, 'सैवभवती' वही पराबीजता को प्राप्त शक्ति रूपी आप अपने भक्त को (पराबीज के उपासक को) जिस बीज के स्मरण करने से प्रत्यक्ष दर्शन देती है, मैं उस पराबीज को प्रणाम करता हूं। इसका सम्बन्ध पहिले श्लोक से है।

संक्षेप में इसका सरलार्थ इस प्रकार होगा :–

हे अम्बिके ! जिस पराबीज की शक्ति अग्नि, चन्द्र, सूर्य, वायु, पृथ्वी, जल और आकाश के भीतर विद्यमान है, तथा जो ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, आदि सुर (देवता) और असुर इन सबके भीतर (हृदय में) स्थित है और जो संसार में उत्पन्न जड़ और चेतन पदार्थों के जीवन की मूल चेतना रूप है और आपके जिस पराबीज के स्मरण करने से पराबीज स्वरूप आप अपने भक्त को प्रत्यक्ष दर्शन देती हैं मैं आपके उस पूर्वोक्त पराबीज को प्रणाम करता हूं। ('प्रणाम करता हूं' इस क्रिया का सम्बन्ध पूर्वोक्त श्लोक से है)

टिप्पणी:—

अग्नीन्दुद्युमणिप्रभञ्जनधरानीराम्बरस्थायिनी,

अर्थात् तुम सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, पृथ्वी, जल और आकाश में रहने वाली हो :–

इसी आशय का पद्य अम्बास्तव में निम्नलिखित है :—

त्वं चन्द्रिका शशिनि तिग्मरुचौरुचिस्त्वं
त्वं चेतनासि पुरुषे पवने बलंत्वम् ।
त्वं स्वादुतासि सलिले शिखिनि त्वमूष्मा
निस्सार मेव निखिलं त्वदृते यदि स्यात् ।

अर्थात् हे माता चन्द्रमा में चाँदनी सूर्य में कान्ति [तेज] पुरुष में चेतनाशक्ति, वायु में उड़ाने की शक्ति जल में स्वादुता [मिष्टता] [जले मधुर शीतलौ] अग्नि में दाहक शक्ति, ये सब तुम्हारी ही दी हुई शक्तियाँ हैं यदि इनमें से तुम्हारी शक्ति हट जाये तो ये सब निरर्थक हो जावें ।

अम्बिके—'अपर्णा पार्वती दुर्गा, मृडानी चण्डिकाम्बिका' ये छः नाम अमरकोष में पार्वती के हैं ।

अम्बा और माता ये दो नाम माता के हैं ।

अम्बा [माता] पुत्रों का पालन करती है, अतः अम्बैवाऽम्बिका, अम्बा ही जो अम्बिका है अर्थात् प्रतिपालिका, पुत्रों का पालन करने वाली ।

ललितासहस्रनाम भाष्य में अम्बिका का अर्थ निम्न प्रकार से लिखा है :—

"जगन्माता भारती पृथ्वी रुद्राण्यात्मिकेच्छा ज्ञान क्रिया शक्तीनां समष्टिरम्बिकेत्युच्यते तद्रूपा वा" ।

अर्थात् भारती पृथ्वी और रुद्राणी स्वरूप इच्छा शक्ति ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्तियों की समष्टि अम्बिका है ।

स्वात्मश्री विजिताजविष्णुमघवश्रीपूरणैकव्रतं
यद्विद्याकविता वितानलहरी कल्लोलिनी दीपकम् ।
बीजंयत्त्रिगुणप्रवृत्तिजनकंब्रह्मेति यद्योगिनः
शान्ताः सत्यमुपासते तदिह ते चित्ते दधेश्रीपरे

हे श्रीपरे ! [श्रियापरा श्रीपरा] जिसका ऐश्वर्य सर्वोत्कृष्ट है [सबसे बड़ा है] भगवती के लिये सम्बोधन, 'स्वात्मश्री विजिताज विष्णुमघवश्रीपूरणैकव्रतं'–स्वात्मा अपना आत्मा सकार ओंकार और बिन्दुत्रय रूप यह स्वात्म शब्द पराबीज के लिये आया है, श्री विभूति, ऐश्वर्य [सामर्थ्य] अर्थात् जिस पराबीज ने अपने सामर्थ्य से विजित जीते गये अज ब्रह्मा, विष्णु, विष्णु भगवान और मघवा इन्द्र, इन तीनों के लिये श्री पूरण में सम्पति दान में जिसका एकमात्र व्रत धारण किया हुआ है, सम्पूर्ण पद पराबीज का विशेषण है।

अर्थात् जिस पराबीज ने अपनी शक्ति से विजित ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र के लिए ऐश्वर्य प्रदान का व्रत धारण किया हुआ है, 'विद्या कविता वितान लहरी कल्लोलिनी दीपकम्'– यह पद भी पराबीज का विशेषण है, यत् जो बीज, विद्या चौदह प्रकार की विद्यायें कविता—नाना प्रकार की भाषाओं की शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार युक्त कविता [छन्द रचना] विद्या और कविता रूप एक संयुक्त वितान चांदनी (बड़ा भारी शामियाना) उसमें जो लहरी हैं रेखायें वही हुई लहरें तरङ्गें उन तरङ्गों से युक्त जो कल्लोलिनी वही उसको

प्रकाशित करने वाला दीपक, कल्लोल और लहरी तरङ्गों का नाम है, कल्लोल शब्द से कल्लोलिनी (नदी) बना जिसमें तरंगें उठती हैं, जिस पराबीज की उपासना के प्रभाव से सब विद्यायें और सब प्रकार की कवितायें साधक के हृदय में अपने आप प्रकाशित होती हैं, स्फुरित होती हैं तथा जो पराबीज, त्रिगुण प्रवृत्ति जनक सत्व, रज और तमोगुण इन तीनों की प्रवृत्ति प्रसार का जनक सम्पादक (पैदा करने वाला) है, तथा शान्ताः योगिन शान्त चित्त योगी योगाभ्यास निरत महात्मा लोग, 'यत् सत्यं बीजं' जिस शाश्वत (नित्य विद्यमान) पराबीज ब्रह्म, इति' ब्रह्म रूप जानकर अर्थात् मोक्षप्रद जानकर, 'उपासते' निदिध्यासन योग द्वारा उपासना करते हैं मैं (साधक) 'ते–' तुम्हारे उस पराबीज को इह (इस जन्म में) चित्ते–' अपने चित्त में (अपने हृदय में) 'दधे–' धारण करता हूं अर्थात् भावना करता हूं।

संक्षेप में इस पद्य का सरलार्थ निम्न प्रकार से होगा :—

हे परमवैभवशालिनी त्रिपुरे भगवति ! मैं (तुम्हारा साधक) इस जन्म में उस पराबीज की अपने हृदय में भावना करता हूँ। जिससे (पराबीज ने) अपनी आत्मा के (सकार, औकार और बिन्दु त्रय रूप के) ऐश्वर्य से ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र को जीतकर (वशीभूत कर) उनके लिये ऐश्वर्य प्रदान का प्रण धारण किया है तथा जो विद्या और कविता के वितान (शामियाना) की लहरी रूपिणी नदी को प्रकाशित करने वाला है। (विद्या और कवित्व की शक्तिदाता), और जो सत्व रज, और तमोगुण की प्रवृत्ति का प्रसार का जनक (उत्पादक) है तथा जिस बीज को शाश्वत मोक्षदायक परब्रह्म मानकर योगीजन शान्त चित्त से जिसकी निरन्तर उपासना करते हैं।

दुर्वासा मुनि संकेतसार बालाविद्याबीजत्रय की यथाक्रम सामर्थ्य वर्णन कर अब कवि विद्याहृदय में से किसी एक बीज की उपासना से अभीष्ट फल प्राप्ति का प्रतिपादन करते हैं।

"एकैकं तव मातृके परतरं संयोगिवाऽयोगिवा
विद्यादिप्रकटप्रभावजनकं जाड्यान्धकारापहम् ।
यन्निष्ठाश्च महोत्पलासन महाविष्णुप्रहर्त्रादयो
देवाःस्वेषु विधिष्वनन्यमहिमस्फूर्ति दधत्येवतत् ।।

व्याख्या—

हेमातृके ! वर्णमाला के स्वर और व्यञ्जनों का संयुक्त नाम मातृका कहलाता है अतएव अन्तर मातृका और बहिर्मातृकान्यास शब्दों का प्रयोग किया जाता है। अतः हे मातृके ! हे स्वर व्यञ्जन रूपे (वर्णमाला स्वरूपिणि भगवति तुम्हारे त्र्यक्षरी मन्त्र का परतरं उत्कृष्ट से उत्कृष्ट, एकैकं एक एक बीजाक्षर दो में से किसी भी एक विद्या का) चाहे वह संयोगि (व्यञ्जन से युक्त) अथवा अयोगि (व्यञ्जन रहित) अर्थात् केवल स्वर स्वरूप ही हो, (श्री बालाजी का प्रथम बीजाक्षर स्वर है) तथा दूसरा बीज स्वर और व्यञ्जन दोनों अक्षरों से युक्त हैं, कवि का तात्पर्य है कि दोनों विद्याओं के किसी भी एक बीजाक्षर की उपासना की जावे। वह बीजाक्षर, विद्यादिप्रकटप्रभावजनकंविद्या और चौदह विद्याओं तथा आदि से जिसकी जो इच्छा हो, उसके

अलौकिक विस्तार का जनक [उत्पादक] और 'जाड्यान्ध कारापहं'—अज्ञान रूपी अन्धकार का नाशक है, तथा 'यन्निष्ठा'—जिस बीजाक्षर की निष्ठा में स्मरण में तत्पर 'महोत्पलासन ०' महोत्पलासन श्री भगवान विष्णु के नाभि कमल में बैठने वाला ब्रह्मा भगवान् के नाभिकमल के लिये महान् [महत्वपूर्ण] शब्द का प्रयोग किया गया है, महाविष्णु महान् विश्व का पालक [रक्षक] अनन्त विश्व का पालक होने से विष्णु के लिये भी महच्छब्द का प्रयोग किया गया है।

'प्रहर्ता'—संहार कारक रुद्र, हर्ता से भी संहार का अर्थ निकल सकता था, प्र उपसर्ग प्रलय का बोधक है, उत्पल और विष्णु के आगे जो कार्य महाशब्द करता है वही कार्य [अधिकता] हर्ता के आगे प्र उपसर्ग लगाने से संहार कार्य की प्रकर्षता का सूचक बन गया है। आदि शब्द से इन्द्रादि देवता लिये गये हैं, 'देवा—' स्वर्ग-लोक में क्रीड़ा करने वाले देवता, 'स्वेषु विधिषु-अपने-अपने साङ्गोपाङ्ग कर्त्तव्यों में 'अनन्यमहिम स्फूर्ति—' बिना किसी की सहायता की अपेक्षा किये लोकोत्तर कार्य कुशलता को, दधत्येव-निश्चय से प्राप्त करते हैं. यहाँ पर एव शब्द का अर्थ निश्चय रूप से है सन्देह का लेश मात्र भी नहीं।

इस पद्य का सक्षिप्त अर्थ निम्न प्रकार से होगा।

हे मातृके ! तुम्हारी दो विद्याओं में से किसी एक विद्या के एक एक उत्कृष्ट संयुक्त [स्वर व्यञ्जन युक्त] अथवा

वियुक्त [व्यञ्जन रहित] केवल स्वर युक्त बीज की उपासना ही चौदह प्रकार की विद्या तथा मनोऽभिलाष की पूर्ति में अलौकिक प्रभाव जनक और अज्ञानान्धकार की नाशक है, स्वर्ग लोक में क्रीड़ा करने वाले ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इन्द्र आदि देवता लोग जिस अकेले बीजाक्षर की उपासना में तत्पर होकर अपने अपने सृष्टि स्थिति और संहार आदि कार्यों की विविध विधान में अनन्य और लोकोत्तर स्फूर्ति को निश्चयात्मक रूप से [एव] प्राप्त करते हैं।

टिप्पणी:—

एकैकं—एक एक बीजाक्षर की उपासना के विषय में नित्यापोडशिकार्णव लिखता है:—

यदक्षरैक मात्रेऽपि संसिद्धे स्पर्धतेनरः ।
रविताक्ष्येन्दुकन्दर्पशङ्करानलविष्णुभिः ॥

अर्थात् एक अक्षर मात्र के सिद्ध होने पर मनुष्य [उपासक] सूर्य, गरुड़, चन्द्रमा, कामदेव, शङ्कर, अग्नि और विष्णु इन सातों के साथ स्पर्धा करने लगता है।

आगे चतुर्थ विश्राम में पुन: कहा है:—

"वदेदानीं महादेव्या एकैकाक्षरसाधनम्"

अर्थात् पार्वती शिव से पूंछती हैं कि कृपया एक एक बीजाक्षर वाग्भवादी कूटाक्षरों की साधना बतलाइये।

अब पूर्वोक्त विद्याद्वय के तीन बीजों के तथा महाविद्या पञ्चदशी के कूटत्रय के विज्ञसाधक की सामर्थ्य (शक्ति) का प्रतिपादन करते हैं :-

इत्थं त्रीण्यपि मूलवाग्भवमहाश्रीकामराज स्फुरच्छक्त्याख्यानि चतुः श्रुतिप्रकटितान्युत्कृष्ट कूटानि ते ।
भूतर्तुश्रुतिसंख्यवर्णविदितान्यारक्तकान्ते शिवे,
यो जानाति सएव सर्वजगतां सृष्टिस्थिति ध्वंसकृत्

व्याख्या—

हे आरक्त कान्ते : (आरक्ता कान्तिर्य-स्या सा) प्रातः-कालीन सूर्य के समान रक्त वर्ण कान्ति वाली शिवे । कल्याण रूपे "शिवा भवानी रुद्राणी" ये सब नाम भगवती पार्वती के हैं शिव का अर्थ कल्याण है "शिवं भद्रं कल्याणं मङ्गलं शुभं (अमर कोश) ये सब मङ्गल के नाम हैं 'शिवेति मङ्गलं नाम' ये दोनों सम्बोधन भगवती त्रिपुरसुन्दरी के लिये लिखे गये हैं इत्थं-पूर्वोक्त प्रकार से 'वागिति'-संकेत सारबाला विद्या के तीन बीजों को तथा अतुःश्रुति प्रकटितानि'-चारों वेदों ने जिसका वर्णन किया है, 'भूतर्तुश्रुतिसंख्यकानि'-'भूत' पञ्चभूत अर्थात् पांच, ऋतु अर्थात ६ : श्रुतिवेद, चार, अर्थात प्रथम कूट में पाँच अक्षर, द्वितीय में छः अक्षर, तृतीय कूट में चार अक्षरों की संख्या वाले, मूल वाग्भव स्फुरच्छक्त्या-ख्यानि-मूल-मूल मन्त्र के अर्थात् पञ्चदशी महाविद्या के प्रथम कूट वाग्भव

कूट [पांच अक्षरों का] द्वितीय कामराजकूट (छः अक्षरों का) इस कूट के आगे महा और श्री ये दो विशेषण लगे हैं, संकेत सारबाला विद्या के शिवकूट का नाम कामकूट (काम है) उसकी अपेक्षा इस कामकूट का महत्व अधिक है अतएव महत् शब्द कूट-अकेले बीजाक्षर को तथा बीजाक्षर समुदाय को [समूह को] भी कहते हैं, तथा यह कामकूट श्री का शोभा का [अर्थात् सौन्दर्य का) भी देने वाला है 'सम्पत्तिः श्रीश्च लक्ष्मीश्च' श्री का अर्थ शोभा का भी है, तीसरा कूट शक्ति कूट चार अक्षरों का है, इसमें शक्ति में आगे स्फुरत् शब्द लगा है, अर्थात् जिसकी शक्ति (स्फुरत्) चमत्कारिणी है, आख्यानि नाम वाले, अर्थात् वाग्भव, कामराज और शक्तिकूट, 'ते' तुम्हारे [त्रिपुरसुन्दरी के] 'त्रीण्यपि' उक्त तीन कूटों को भी जो (साधक) जानता है अर्थात् गुरुदेव द्वारा अभिषेक लेकर जो उक्त कूटों की उपासना करता है [साधना करता है] वह साधक स्थावर जंगम स्वरूप [जड़ चेतन स्वरूप] जगत् [संसार] की सृष्टि स्थिति और संहार [नाश] के लिये समर्थ हो जाता है।

संक्षेप में इस पद्य का सरल अर्थ निम्नलिखित होगा—

हेवालसूर्य के समान कान्तिवाली मंगल स्वरूपे! भगवति! पूर्वोक्त प्रकार से वर्णित संकेत सारबाला विद्या के तीन बीजों को तथा चारों वेदों में निरूपित [कथित] पञ्चदशी मन्त्र के अतुल शक्तिशाली पांच छः और चार अक्षर संख्यायुक्त यथाक्रम वाग्भव, कामराज और शक्ति नाम के कूटों को भी जो साधक सम्प्रदायाचार्य से (गुरु से) अभिषेक

कराकर ग्रहण करता है और पुरश्चरण रूप से उनकी साधना करता है वह [उपासक] संसार में सृष्टि स्थिति और संहार करने में समर्थ होता है।

टिप्पणी:—

चतुःश्रुति प्रकटितानि-चारों में वर्णित अथर्ववेद के सौभाग्य काण्ड में–कामो योनिः कमला वज्रपणि गुंहाहसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः। पुनर्गुहा सकलामायया च पुरूच्येषा विश्वमाता दिविद्या"। इस मन्त्र में पञ्चदशी मन्त्र का उद्धार किया गया है।

हमने अपने 'नरेन्द्र वंश' नाम के काव्य में पञ्चदशी मन्त्र के अक्षरों को उलट फेर से रक्खा है:—

ए ई ककार त्रय और लकार तीन
ह्रीङ्कार तीन इस युग्म युत त्रिकूट,
कोई त्वदीय मनुका मनमें भवानि !
हैं नित्य जाप करते जप यज्ञ वाले

ऋग्वेद में:—"इन्द्रोमायाभिः पुरुरूप ईयते" इत्यादि तैत्तिरीय ब्राह्मण के अन्तर्गत-अरुणोपनिषद में:—"इमा नु कंभुवना सीषधेम" यहाँ से लेकर:—ऋषिभि 'रदात् पृश्निभिः" यहाँ तक।

अरुणोपनिषद् का अर्थ:—

"अरुणायाः भगवत्याः प्रतिपादिका उपनिषद्" अर्थात् श्री भगवती का प्रतिपादन जिस उपनिषद् में किया गया है वह अरुणोपनिषद् है।

(षडध्व शोधन)

मन्त्र दीक्षा लेने में अभिषेक के पूर्व गुरुहोम के अनन्तर स्नानादि से निवृत्त शिष्य को पञ्चगव्य पिलाकर मण्डप के

दक्षिण द्वार से यागस्थान में लाकर अग्नि कुण्ड के निकट बैठाते हैं ततः

विलोक्य दिव्यदृष्ट्या तं तच्चैतन्यं हृदम्बुजात् ।
गुरुरात्मनि संयोज्य कुर्यादध्वविशोधनम् ।।

अर्थात् शिष्य को दिव्य दृष्टि से देखकर उसकी (शिष्य की) बहती हुई नाड़ी से अङ्कुश मुद्रा द्वारा तारका कृति चैतन्य को खींचकर अपनी बहती हुयी नाड़ी से अपने हृदय में स्थापित करें। तदनन्तर षडध्व शोधन करें। अध्वशोधन से शिष्य शरीर की शुद्धि की जा सकती है, अतः मानव शरीर षडध्वमय ही माना गया है, यथा:—

शान्त्यतीतकला मूर्द्धा शान्ति वक्षशिरोरुहा ।
निवृत्ति जानुजङ्घाध्रि भुवनाध्वशिरोरुहा ।।
मन्त्राध्वमांसरुधिरा पदवर्ण शिरायुता ।
तत्वाध्व मज्जामेदोस्थिधातुरेतो युताशिवे ! ।।

अर्थात् निवृत्ति, प्रतिष्ठा आदि पंचकलाओं से मनुष्य का मूर्द्धा, मुख, जानु, और पैर बने हैं, अतः ये अंग कलाध्वमय हैं, केश भुवनाध्वमय हैं। मांस और रुधिर मन्त्राध्व मय हैं मनुष्य की शिरायें पदाध्व और वर्णाध्वमय हैं, तथा मज्जा मेद अस्थि धातु और रेत [वीर्य] ये सब तत्त्वाध्वमय हैं।

वर्णाध्वा, पदाध्वा और मन्त्राध्वा ये तीन शब्दाध्वमय हैं, कलाध्वा, तत्त्वाध्वा और भुवनाध्वा ये तीन अर्थाध्व हैं। निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति और शान्त्यतीता कला

कलाध्वा है, छत्तीस शिवतत्व, बत्तीस वैष्णव तत्व, चौबीस साँख्य तत्व, दस प्रकृति तत्व और सात शक्ति [त्रिपुरा] तत्व ये तत्वाध्वा हैं, पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये भुवनाध्व कहे जाते हैं, वर्णमाला के अकार से क्षकार पर्यन्त अक्षर [वर्ण] वर्णाध्व कहे जाते हैं, वर्णों के समूह से [अक्षरों के समूह से] पद बनते हैं। अतः वर्ण समूह पदाध्व कहे जाते हैं, अक्षरों से मन्त्र बनते हैं अतः मन्त्रराशि [अ क च ट त प य] ये मन्त्राध्व होते हैं। अतएव लिखा है:–निवृत्याया कलापञ्चकलाध्वेति प्रकीर्तिता।

तत्वाध्वा वहुधा भिन्नः शिवाद्यागम भेदतः।
ईरितो भुवनाध्वेति भुवनानि मनीषिभिः॥
वर्णाध्वेति नादि क्षान्तान् मनीषिणिः।
वर्णसङ्घः पदाध्वा स्यान्मन्त्राध्वा मन्त्रराशयः॥

अध्वशोधन : [शारदातिलक]

क्रमोदेतानध्वनः षट् शोधयेद् गुरु सप्तमः।
पदान्धु नाभि हृद्भाले मूर्धस्वेपि शिशोः स्मरेत्॥

अर्थात्

गुरुदेव शिष्य के 'पादे' कलाध्व शोधन करे
'अन्धौ' तत्वाध्वका " "
'नाभौ' भुवनाध्वका " "
'हृदि' वर्णाध्वका " "
'भाले' पदाध्वका " "
[सविन्दु वर्णानित्यर्थः।]
'मूर्ध्नि:' मन्त्राध्व का शोधन करे
[सप्तमन्त्रान् विन्यस्येत्यर्थः]

यह षडध्व शोधन क्रिया का प्रारम्भमात्र दिखलाया है पूर्ण प्रक्रिया शारदा तिलक आदि मन्त्रशास्त्र ग्रन्थों में देखें।

यदि श्री विद्या कूटत्रय ज्ञान मात्र से ही उपर्युक्त सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं तो पुन. श्री सदाशिवोक्त नित्योपासना की आवश्यकता क्या रही ? इस आशङ्का का परिहार साङ्गोपाङ्ग उपासना प्रतिपादन द्वारा करते हैं :—

नित्यं यस्तव मातृकाक्षरसखीं सौभाग्यविद्यां जपेत्
सम्पूज्याखिलचक्रराजनिलयां सायंतनाग्निप्रभाम् ।
कामाख्यं शिवनामतत्त्वमुभयं व्याप्यात्मना सर्वतो
दीव्यन्तीमिह तस्य सिद्धिरचिरात् स्यात्त्वत्स्वरूपैकता ।

व्याख्या :

हे त्रिपुरसुन्दरि जो तुम्हारा उपासक 'अखिल चक्रराज निलयाँ'-सम्पूर्ण चक्रराज में निवास करने वाली अर्थात् नव चक्रों में स्थित चक्रेश्वरी तथा आवरण देवताओं के मध्य में [बिन्दुचक्र में विराजमान] 'सायंतनाग्निप्रभां' सायंकाल में [सन्ध्याकाल मे] प्रदीप्त [प्रज्वलित] अग्नि के समान तेजोवती [तेजवाली] दिन की अपेक्षा सायंकाल- से अग्नि की तेजोवृद्धि हो जाती है। 'कामाख्यं'—कामेश्वर शिव को [काम्यते अभिलष्यते परमार्थविद्भिर्योगिभिरिति कामः] पञ्चदशी स्वरूप—त्रिपुरसुन्दरी के शिव का नाम काम [कामेश्वर] है, "कामश्चासौईश्वरः कामेश्वरः" शिवनामत्वम्—ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव इनके समुदाय रूप [समूह] सिंहासन को "उभयं" दोनों को अर्थात्

कामेश्वर शिव को तथा सिंहासन के पाद् [पाया] स्वरूप ब्रह्मादि उक्त चारों देवों को और सदाशिव रूप मन्त्र फलक को आत्मनाव्याप्य अपने शरीर के अवयवों से आच्छादित कर 'सर्वतः दीप्यन्ती'-चारों ओर से प्रकाशमान् तुमको 'सम्पूज्य'-[सम्यक् प्रकारेण पूजयित्वा] पद्धति के अनुसार तुम्हारी पूजा कर [अर्चन कर] ने के उपरान्त 'तव'-तुम्हारी सौभाग्यविद्यां'-सौभाग्यप्रदा विद्या को [पञ्चदशीमन्त्र को] 'मातृकाक्षर सखीं कृत्वा'-वर्णमाला के अक्षरों की सखी— [सहेली, साथिनी] बनाकर 'जपेत'-जप करता है अर्थात् मातृकाक्षरों की माला [अ-क्ष-माला] बनाकर उससे तुम्हारे मन्त्र का जप, यद्यपि जप वाचिक, उपांशु, और मानस के भेद से तीन प्रकार का है तथापि यहाँ पर अ-क्ष-माला से मानसिक जप की ओर ही संकेत है। विशेष द्वितीय पथ की व्याख्या में अक्षमाला का विधान दर्शाया गया है। 'इह'-इस लोक में 'तस्य' उपर्युक्त प्रकार से पूजा और जप करने वाले साधक की सिद्धि मनोवाञ्छित सिद्धि प्राप्त करने में 'अचिरात्-देर नहीं लगती अर्थात् शीघ्र उसकी अभिलाषा पूर्ण होती है, और मरणोपरान्त परलोक में (तुम्हारे लोक में) 'त्वत् स्वरूपैकता'-तुम्हारी मूर्ति के साथ एकरूपता हो जाती है अर्थात् 'सायुज्य मुक्ति को प्राप्त होता है।

इस पद्य का संक्षिप्तार्थ निम्नलिखित होगा :—

हे भगवति त्रिपुरसुन्दरि ! चक्रराज के मध्य में स्थित सायंकालीन अग्नि के समान कान्तिमयी कामेश्वर शिव तथा सिंहासन के पाये बने हुये ब्रह्मा 'विष्णु, रुद्र और ईश्वर इन

चार देवों को तथा फ़लक के रूप में सदाशिव को अपने शरीर से निकले हुये तेज से व्याप्त कर चतुर्दिग् से प्रकाशित हो रही तुम्हारी पूजा करने के अनन्तर जो साधक अ–क्ष–माला से सौभाग्यप्रद तुम्हारे पञ्चदशी मन्त्र का जप करता है वह (उपासक) शीघ्र ही इस मही में (संसार में) मनो-भिलषित सिद्धि प्राप्त कर मरणोपरान्त तुम्हारे रूप में लीन हो जाता है अर्थात् सायुज्य मुक्ति को प्राप्त करता है।

टिप्पणी :—

मातृकाक्षर सखीं—अक्ष माला से मानसिक जप किया जाता है, अतएव वायवीय संहिता में लिखा है :—

"धिया मन्त्राक्षरश्रेणीं वर्णस्वर–पदाम्बिकाम् ।
उच्चरेदर्थसंस्मृत्या स उक्तो मानसो जपः । इति

'सम्पूज्याखिल चक्रराज निलयां'–चक्रराज में (श्री मन्त्र में) विराजित तुम्हारी पूजा करके–श्री चक्रराज के निम्न-लिखित नौ चक्र हैं—१-त्रैलोक्यमोहन चक्र २-सर्वाशा परिपूरक ३-सर्व संक्षोभण ४-सर्व सौभाग्यदायक ५-सर्वार्थ साधक ६-सर्व रक्षाकर ७-सर्व रोगहर ८-सर्व सिद्धिप्रद और ९वां है सर्वानन्दमय चक्र, चक्र प्रत्येक नाम के साथ लगेगा।

उक्त चक्रों में अलग अलग आवरण देवताओं [शक्तियों] का समूह अपनी अपनी चक्रेश्वरी के साथ बैठा रहता है नव चक्रेश्वरी क्रमशः नौचक्रों की स्वामिनी है जिनके आधीन नव चक्रों के आवरण देवता [शक्तियाँ] हैं जो निम्नलिखित हैं:–
१-त्रिपुरा चक्रेश्वरी, २-त्रिपुरेशी च०, ३-त्रिपुरसुन्दरी च०,

४-त्रिपुरवासिनी च०, ५-त्रिपुरा च०, ६-त्रिपुर मालिनी च०, ७-त्रिपुरा सिद्धा च०, ८-त्रिपुराम्बा च० और ९-महा त्रिपुर-सुन्दरी चक्रेश्वरी ।

श्री चक्रराज में आवरण पूजा से पूर्व लयाङ्ग पूजा षडङ्गार्चन, नित्यादेवी यजन और श्री गुरुमण्डलार्चन होता है, तदनन्तर नवावरणी सपर्या होती है, नव चक्रार्चन के अनन्तर पञ्च पञ्चिका पूजा-१-पञ्चलक्ष्मी, २-पञ्चकोशाम्बा, ३-पञ्चकल्पलता, ४-पञ्कामबुधा और ५-पञ्च रत्नाम्बा, ये पञ्च पञ्चिका में गिनी जाती हैं। पञ्च पञ्चिका का पूजन कर षडदर्शन विद्या पूजा, षडाधार पूजा और आम्नाय समष्टि पूजा होती है । यह आवरण पूजा चक्रराज की संक्षिप्त रूप में दिखाई गयी है ।

'कामाख्यं शिवनाम तत्व मुभयं व्याप्यात्मना सर्वतः' अपने शरीर के अवयवों से आच्छादित कर, अर्थात् जब भगवती चक्राकारता को धारण करती है उस समय उसके अवयव (शरीर के अङ्ग) आवरण देवताओं में परिणत हो जाते हैं, अतएव "कामकला विलास" में लिखा है :—

सेयं परामहेशी चक्राकारेण परिणमेत यदा ।
तद्देहावयवानां परिणतिरावरणदेवताः सर्वाः ।।३६

सेयं अपरिच्छिन्नानन्त तेजो राशिमयी परा सर्वोत्कृष्टा महेशी चक्राकारेण – "चक्र नवात्मकमिदं नवधा भिन्नमन्त्रकम्" इति बैन्दवादि त्रैलोक्य मोहनान्त चक्रनवकात्मना—

"स्फुरन्ता मात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्यसम्भवः" इति पूर्णानन्दमयात्मा ब लोकनसमये परिणमेत आकारान्तरेण, तद्देहा वयवानां तस्या

स्त्रिपुरायाः देहः तेजः पुञ्जात्मकः, तस्या अवयवाः किरणाः तेषां परिणतिः अवस्थान्तरापत्तिः इह आवरण देवता :—

वशिन्याद्यणिमाद्यनन्तशक्तिनिकुरम्बं चिदानन्दसमुद्रात्मकमेव सकाशत्वे फेन बुद्‌बुद् तरङ्गादिवत् अनन्तकोटिशक्तयः प्रादुर्भावतिरो भावी भवन्ति इत्यर्थः ।

अर्थात् जब अनन्त तेजो राशिमयी यह सर्वोत्कृष्ट अनन्त कोटि योगिनी गुण से समाराधित जगदम्बिका त्रिपुरसुन्दरी चक्ररूप धारण करती है उस समय इसका शरीर तेजः पुञ्जात्मक बन जाता है और इसके शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्ग उसके किरण बन जाते हैं, ये ही किरणवशिनी आदि तथा अणिमादि अनन्त शक्ति समूह आवरण देवता उसे चिदानन्दात्मक परब्रह्म रूप समुद्र के फेन तरङ्ग—और बुदबुद् [बुलबुले] की भांति उसी से उत्पन्न होते हैं और वही लय हो जाते हैं ।

नोट :—

श्री चक्र (श्रीमन्त्र) रहस्य के विषय में हयग्रीवमत आनन्दभैरवमत और दक्षिणा मूर्ति मत ये तीन मत हैं । हयग्रीव और आनन्द भैरव मत में नौ चक्र माने जाते हैं, किन्तु दक्षिणा मूर्ति मत में वृत्त त्रय को भी एक चक्र मानते हैं, उसका नाम त्रैहर्ग साधन का चक्र है । अतः श्री चक्रोत्पत्ति तथा आवरण देवतोत्पत्ति में मतान्तर में किञ्चिद्‌भेद हो जाता है ।

उपासना से अन्य सिद्धियाँ तो प्राप्त हो सकती हैं परन्तु महाकवित्व की अभिलाषा करने वाले अव्युत्पन्न मनुष्यों को काव्य कोश और व्याकरण के रटे बिना सिद्धि प्राप्ति असम्भव प्रतीत होती है—इस आशंका का समाधान करते हैं:—

काव्यैः पापठितैः किमल्पविदुषां जोघुष्यमाणैः पुनः
किं तैर्व्याकरणैर्विबोधिततया किं वाभिधानश्रिया ।
एतैरम्ब न बोभवीति सुकविस्तावत्तवश्रीमता—
यविन्नानुसरीसरीति सरणिं पदाब्जयोः पावनीम्।।१६।।

व्याख्या :—

हे अम्ब, हे अम्बिके माता तुम्हारा साधक जब तक तुम्हारे परम सौभाग्यशाली चरण कमलों की पवित्र सरणि पद्धति का (मार्ग का) तन्मयता से अनुसरण नहीं करता है, अर्थात् जब तक सद्गुरु द्वारा सविधि दीक्षा ग्रहण कर पुरश्चरण मन्त्र सिद्धि नहीं प्राप्त करता है तब तक सुकवि नहीं बन पाता है अर्थात् अपनी कविता से विद्वानों को चमत्कृत करने में सुतरां असमर्थ रहता है। मन्दमति मनुष्य महाकवि कालिदास आदि कवियों के रघुवंश शिशुपाल वध आदि काव्यों के बार-बार पढ़ने से व्याकरण के सूत्र और फक्किकाओं को घोंटने से (रटने से) और अमर कोष आदि कई कोशों को (कोश संस्कृत भाषा में प्रसिद्ध २५ हैं) स्मृति पूर्वक ज्ञानवृद्धि से सुकवि नहीं बनता है। कविता के लिये

मुख्य साधन कम से कम पञ्च महाकाव्यों का अध्ययन, व्याकरण का पूर्णतया पाण्डित्य, और कोशों की स्मृति, ये तीन वस्तुयें नितान्त आवश्यक हैं। छन्द और अलङ्कार काव्य के अङ्ग होने से उसी के अन्तर्गत है अतएव पृथक् निर्देश नहीं किया गया है।

कवि के लिखने का तात्पर्य यह है कि बिना उपासना के यथार्थ में कविता (कवित्व) शक्ति प्राप्त नहीं होती है। अतएव किसी ने लिखा है :—"इष्ट बिना सब भृष्ट है ज्योतिष वैद्य कवित्व"

सरलार्थ :—संक्षेप में इस पद्य का सरल अर्थ निम्न प्रकार से होगा :—

हे अम्बिके (माता) जब तक कोई भी पुरुष अतिशय शोभाशाली तुम्हारे चरण कमलों के अत्यन्त पवित्र मार्ग का अनुसरण नहीं करता अर्थात् विधिविधान से उपासना नहीं करता तब तक वह सुकवि नहीं बन सकता अर्थात् उसकी कविता में जन मनोरञ्जन का चमत्कार नहीं आ पाता। बिना तुम्हारी भक्ति (उपासना) के अल्पबुद्धि मानव महाकवि विरचित महाकाव्यों के बार बार पढ़ने से कभी भी सुकवि नहीं बन सकता है अर्थात् उसकी कविता चमत्कार कारिणी कदापि नहीं होती है।

टिप्पणी :—

पापठितैः, जोघुष्य माणैः, वोभवीति, अनुसरीसरीति-ये क्रियायें पठ्, घुसिर, भू और सृ धातुओं की यङन्त प्रक्रिया के रूप हैं। बार-बार (पौनः पुन्येन भृशार्थवा) किसी कार्य के करने के लिये इस प्रक्रिया को काम में लिया जाता है।

सरणि पादाब्जयो: पावनीम्—इस वाक्य से उपासना के बिना केवल काव्य व्याकरणादियों के रटने से सुकवि [महाकवि] नहीं बन पाता, हाँ केवल कविता मात्र कर सकता है। अतएव शिवलीलार्णव महाकाव्य में कविवर स्व० नीलकण्ठ दीक्षित ने लिखा है:—

"सव्यं वपुः शब्दमयं पुरारेः
अर्थात्मकं दक्षिणमामनन्ति ।
अङ्गं जगन्मङ्गलमैश्वरं त—
दर्हन्ति काव्यं कथमल्पपुण्याः ॥१५॥ १ सर्ग

अर्थात् भगवान शंकर का वामभाग (भगवती जगदम्बिका) शब्दमय है, और दक्षिण भाग अर्थमय हैं अतः संसार के कल्याणकारक शिवजी के शरीर रूपी काव्य को स्वल्प पुण्य वाले कवि कैसे पा सकते हैं। अर्थात् बिना भगवती और भगवान् शिव की कृपा के मनुष्य महाकवि नहीं बन सकता।

महाकवि बनने के लिये भगवान् शंकराचार्य ने "सौन्दर्यलहरी" नाम की जगदम्बिकास्तुति में उपासना पर विशेष बल दिया है वे लिखते हैं :—

"सावित्री भिर्वाचां शशिमणि शिलाभङ्ग, रुचिभिः
वशिन्याद्याभिस्त्वां सह जननिसञ्चिन्तयतियः ।
स कर्ता काव्यानां भवति महतां भङ्गि रुचिभिः
वचोभिर्वाग्देवी वदन कमलाऽऽमोदमधुरैः ॥१७ ॥

सरलार्थ :—

हे जननि ? वाणी को पैदा करने वाली (वाग्देवता का विशेषण) चन्द्रकान्तमणि खण्ड (टुकड़ा) के समान चमकने वाली (शुभ्रवर्ण) वशिनी आदि आठ वाग्देवताओं (सर्वरोग हर चक्र के आवरणदेवताओं) के साथ जो साधक सम्यक्

प्रकार से तुम्हारा ध्यान करता है वह एक अर्थ के लिये (एक विषय के लिये) अनेक प्रकार की सुन्दर शब्द रचना करके [शब्द रचना द्वारा] तथा सरस्वती के मुखारविन्द के सौरभ [सुगन्ध] के समान मधुर [चित्ताकर्षक] वचनों से [सूक्तियों से] अनेक महाकाव्यों का रचयिता [निर्माता यद्वा लेखक] बन जाता है।

वशिन्यादि आठ वाग्देवता अष्ट वर्गात्मिका सप्तमावरण देवता निम्नलिखित हैं :—

१—वशिनी २—कामेश्वरी ३—मोदिनी ४—विमला ५—अरुणा ६—जयिनी ७—सर्वेश्वरी और ८—कौलिनी। सर्व रोगहर चक्र नायिका त्रिपुरा सिद्धा है।

लघुस्तव में बिन्दु रहित वाग् बीज के अकस्मात् मुख से उच्चरित होने पर भी वागीश्वरी के प्रसाद से कवित्व शक्ति का हृदय में प्रादुर्भाव हो जाता है, तथाहि :—

"दृष्ट्वा सम्भ्रमकारिवस्तु सहसा ऐ ऐ इति व्याहृतं
येनाऽऽकूत वशादपीह वरदे ! विदुं विनाप्यक्षरम्।
तस्याऽपि ध्रुवमेवदेवि ! तरसा जाते तवाऽनुग्रहे
वाचः सूक्ति सुधारस द्रव मुचो निर्यान्ति वक्त्राम्बुजात्॥

अर्थात् भय, आश्चर्य अथवा करुणा से यदि किसी के मुख से बिन्दु के बिना 'ऐ' ऐसा अक्षर निकल जाता है तो भगवती वाग्वादिनी के प्रशाद से वह अमृतमयी वाणी में कविता करने लग जाता है। वाग्बीज और काम बीजों का माहात्म्य देवी भागवत में विशद रूप से वर्णित है। कवित्व

शक्ति, बिना भगवती के कृपा कटाक्ष के कवि के हृदय में उत्पन्न नहीं होती है, इस बात को शिवलीलार्णव में स्व० दीक्षित जी ने बड़ी अच्छी तौर से कहा है :

तान्येव शास्त्राणि त एव शब्दा
स्तएव चार्था गुरु वस्तएव ।
इयान् विशेषः कविता पथेऽस्मिन्
देव्या गिरां दृक् परिवर्त भेदः ॥३॥ १ सर्ग

कवि कहता है कि शास्त्र वे ही हैं जिन्हें सब पढ़ते हैं, शब्द और उनके अर्थ भी वे ही हैं, तथा पढ़ाने वाले गुरु लोग भी सब विद्वान ही होते हैं, केवल कविता के मार्ग में इतनी विशेषता अवश्य है कि जिसके ऊपर भगवती सरस्वती का कृपा कटाक्ष पड़ जाता है वह तो महाकवि कालिदास के समान हो जाता है और जिससे [भगवती वाग्देवी ने] अपनी दृष्टि फेर ली [नजर हटा ली] वह कोरा पण्डित रह जाता है उसकी कविता में चमत्कार नहीं रहता। भगवती के कृपा कटाक्ष के लिये उपासना नितान्त ही आवश्यकीय है। अतएव वाणी विनायक और भवानी शंकर के परमोपासक श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है:—

"सुर नर मुनि जन की यह रीति
स्वारथ लागि करहि सब प्रीति" इति

कवि दर्शाता है कि श्री जगजननी भगवती के उपासक के लिये अनिष्ट सम्पादक वस्तु भी इष्टप्रति सम्पादक बन जाती है :—

गेहं नाकति गर्वित प्रवणति स्त्री संगमो मोक्षति
द्वेषी मित्रति पातकं सुकृततिक्ष्मावल्लभो दासति ।
मृत्युर्वैद्यति दूषणं सुगुणति त्वतपादसंसेवनात्–
त्वांवन्दे भवभीति भञ्जन करीं गौरीं गिरीशप्रियां॥१७॥

व्याख्या :—

हे भगवति त्रिपुरसुन्दरि ! तुम्हारे चरणकमलों की सेवा करने से अर्थात् सर्वदा तुम्हारी उपासना में निरत रहने से तुम्हारे भक्त साधक के लिये उनका घर नाकति स्वर्ग बन जाता है । नाक न नहीं अक दुःख न + अक, दीर्घ सन्धि से नाक बन गया, जिसमें दुःख नहीं होता है वह (एयान) स्वर्ग । 'गर्वित;'—घमण्डी आदमी तुम्हारे साधक के सन्मुख 'प्रवणति'—उसके आधीन हो जाता है, स्त्री प्रसङ्ग मोक्षप्रद बन जाताहै, यह बात गुरुमुखैकवेद्य है, अतएव—
कुलार्णव लिखता है :—

भोगो योगायते साक्षात् पातकं सुकृतायते
मोक्षायते च संसारः कुलधर्मे कुलेश्वरि ॥इति

इस पद्य की व्याख्या गुरुमुख से जानने योग्य है । वास्तव में इसी आधार पर कवि ने अपनी रचना की है । द्वेषी द्वेष (वैर) रखने वाला शत्रु मित्र की भांति आचरण करने लग

जाता है, पातक पाप पुण्य में परिणत हो जाते हैं (बदल जाते हैं) 'क्ष्मावल्लभः' पृथ्वी का स्वामी राजा 'दासति'– दास की तरह सामने खड़ा रहता है [अर्थात् आज्ञा की प्रतीक्षा में रहता है) अब राजा तो रहे नहीं अतः राजा का अर्थ शासनारूढ़ व्यक्ति से लगाया जाता है। 'मृत्युः' मौत अर्थात् काल, वैद्यति' वैद्य का कार्य करता है, रक्षा करता है, दवा देकर उसको बचाता है। जैसे वैद्य रोगी को औषधि देकर यथाशक्ति बचाने का प्रयत्न करता है वैसे काल भी तुम्हारे सेवक को छोड़ने के लिये उद्यत रहता है।

'दूषण'–दोष 'सुगणति' अर्थात् दोष गुणों में परिवर्तित हो जाते हैं [बुराई भलाई में बदल जाती है) अतः 'भवभीति भञ्जन करीं'–संसार में आवागमन के भय को नाश करने वाली 'गिरीश प्रियाम्'–कैलाश के स्वामी शिवजी की प्राण-प्रिया अर्थात् महाकामेश्वर प्रिया महा कामेश्वरी श्री महात्रिपुरसुन्दरी यतः त्रिपुरोपासक कवि श्री महात्रिपुरसुन्दरी को लक्ष्य करके स्तुति कर रहा है, 'त्वांगौरी'–तुम गौरी को [पार्वती को] मैं वन्दे प्रणाम करता हूं।

इस पद्य का संक्षिप्तार्थ निम्न प्रकार से होगा—

हे भगवति त्रिपुरे तुम्हारे चरणों की सेवा करने से तुम्हारे भक्त उपासक के लिये उसका घर स्वर्ग बन जाता है, उसके सन्मुख घमण्डी पुरुष भी नम्र हो जाता है, तथा स्त्री प्रसङ्ग मोक्ष में, शत्रु मित्र में, पाप पुण्य में, राजा दास में, मृत्यु [यमराज] वैद्य में और दोष गुणों में परिणित हो जाते हैं,

अतः संसार में आवागमन के भय की विनाशिनी, भगवान शंकर की प्र.णवल्लभा तुम गौरी भगवती [पार्वती] को मैं प्रणाम करता हूं।

टिप्पणी :—

गौरीम जो गौरवर्ण वाली है, गौरवर्णी, महावशिष्ठ में लिखा है— "गौरी गौराङ्ग देहत्वात्" इति। देवि पुराण भी महावशिष्ठ के मत को पुष्ट करता है—

योगाग्निनातु या दग्धा पुनर्जाता हिमालयात्
शङ्ख कुन्देन्दुवर्णा चेत्यतो गौरीति सा स्मृता ॥

अर्थात् भगवती सती योगाग्नि में भस्म होकर पुनः पर्वतराज हिमालय के यहां पैदा हुई। वह शंख कुन्द पुष्प और इन्द्र चन्द्रमा के समान गौर वर्ण है अतः गौरी कहलाई गई।

'उमा कात्यायनी गौरी काली हैमवतीश्वरी,' इत्यादि अमर कोश में सत्रह नाम पार्वती जी के लिखे हैं।

अब कवि दुर्वासा मुनि त्रिपुरा नाम की निरुक्ति का मूल काम कलाक्षर के विन्दु मय से शरीर के भीतर और बाहर व्याप्तत्रिकमात्र को दर्शाता है :—

आद्यैरग्निरवीन्दु विम्बनिलयैरम्ब त्रिलिङ्गात्मभि-
र्मिश्रारक्तसितप्रभैरनुपमैर्युष्मत् पदैस्तै स्त्रिभिः ।
स्वात्मोत्पादित काललोकनिगमावस्था मरादित्रयै-
रुद्भूतं त्रिपुरेति नामकलयेद्यस्ते सधन्यो बुधः ।।१८।।

व्याख्या :—

हे अम्ब हे माता आद्यैः अः आदिर्ये यान्ते तैः अर्थात् अकथादि त्रिकोण में स्थित अ, क, थ, इन तीनों अक्षरों की जिनमें प्रमुखता है, अग्निरवीन्दुविम्बनिलयैः अग्निमण्डल सूर्य मण्डल और चन्द्रमण्डल में वास करने वाले त्रिलिङ्गात्मभिः मूलाधार में स्वयम्भू लिङ्ग हृदय में [अनाहत में] वाणलिङ्ग, और भ्रूमध्य में [आज्ञा में] इतरलिङ्ग स्वरूप [उपर्युक्त पद तुम्हारे तीन पदों के विशेषण हैं] मिश्रारक्तसितात्मकैः अर्थात् रक्त शुक्ल और मिश्र [श्वेत रक्त] वर्णों से मिश्रित पाटल रङ्ग के अनुपमैः उपमा रहित [जिनकी बराबरी किसी के साथ नहीं हो सकती है] तैः त्रिभिः पदैः तैः पूर्वोक्त विशेषणों से [त्रिलिङ्गात्मभिः तथा मिश्रारक्तासित प्रभैः इन विशेषणों से युक्त] त्रिभिः तीन स्थानों में व्याप्त 'युष्मत् पदैः' तुम्हारे रक्त शुक्ल और मिश्र चरणों से तथा 'स्वात्मोपादित काललोक निगमाऽवस्यामरादित्रयैः'–स्वात्म स्वस्या महात्रिपुरसुन्दरी आत्मा, महात्रिपुरसुन्दरी के काम कलाक्षर स्वरूप आत्मा से कामकलाक्षर रक्तशुक्ल और मिश्रविन्दु स्वरूप है) उत्पादित उत्पन्न किये गये अर्थात् त्रिविन्दु स्वरूप काम कलाक्षर ही

महात्रिपुरसुन्दरी की आत्मा है, उससे उत्पन्न इस त्रिविन्दु स्वरूप त्रिपुरसुन्दरी के शरीर से ही त्रिधावस्थित समस्त वस्तु में उत्पन्न हुई है, त्रिधावस्थित वस्तुयें कौन कौन सी हैं जो बिन्दु त्रय समष्टि भूत कामकलाक्षर रूपिणी त्रिपुरा से उत्पन्न हुई हैं उन्हें दिखाता हूँ—

काल भूत भविष्यद् और वर्तमान, तीन काल, लोकत्रय स्वर्ग मृत्यु और पाताल, निगमत्रय–तीन वेद ऋग् यजुः और सामवेद, अवस्था जागृत स्वप्न और सुषुप्ति ये तीन अवस्थायें, अमरत्रय ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र, तीन देवता, आदि–इत्यादि तीन तीन वस्तुओं का समूह अर्थात् पीठत्रय, जालन्धर कामरूप और उड्डीयान, वह्नित्रय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आहव्वनीय, शक्तित्रय-इच्छा शक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति से उद्भूत-उत्पन्न ख्याति को प्राप्त, त्रिपुरा त्रिधा व्यवस्थित [त्रितयमात्र] वस्तु की कारण स्वरूप, इति इस प्रकार में तुम्हारे नाम–त्रिपुरा-नाम के मन्त्र को 'यः' जो साधक [उपासक भक्तप्रवर] ,कलयेत्' जानता है स–वह ज्ञानी उपासक जिसने श्री गुरुदेव के मुख से रहस्य प्राप्त किया है, इस संसार में धन्य है।

इस पद्य का संक्षिप्तार्थ निम्न प्रकार से होगा :—

हे अम्ब ! अकथादि त्रिकोण में स्थित अ, क, थ, इन तीन अक्षरों की जिनमें प्रमुखता है तथा अग्नि, सूर्य और चन्द्र मण्डल में स्थित, मूलाधार, अनाहत और आज्ञा चक्र में स्थिति शील स्वयम्भू, वाण और इतरलिङ्ग स्वरूप अनुपम तुम्हारे रक्तशुक्ल और मिश्रात्मक चरणों से तथा त्रिपुरसुन्दरी के

(तुम्हारे) काम कलाक्षरात्मक त्रिविन्दु स्वरूप आत्मा से उत्पादित त्रिधा व्यवस्थित (त्रितयात्मक) तीन काल तीन लोक तीन वेद तीन अवस्था तीन देव तीन आदियों से ख्याति प्राप्त (विख्यात) त्रितय मात्र वस्तु की कारण तुम्हारे त्रिपुरा नामक मन्त्र को जो उपासक जानता है अर्थात् त्रयात्मक जो भी पदार्थ है वे त्रिपुरा नाम के अन्तर्गत हैं तथा त्रिपुरा भगवती स्वरूप है वह ज्ञानी उपासक धन्य है (कृत्य कृत्य हैं)।

टिप्पणी :—

'स्वात्मोत्पादित काललोक निगमावस्थाऽमरादि
त्रयैरुद्भूतं त्रिपुरेतिनाम कलयेद्यस्ते स धन्यो भुवि'–

कवि ने यहाँ पर (इस पद्य में) श्री त्रिपुरसुन्दरी के विन्दु त्रयात्मक काम कलाक्षरा स्वरूप आत्मा से त्रितय मात्र वस्तु की उत्पत्ति दर्शायी है। लघुस्तव में भी त्रितय मात्र वस्तु (त्रयात्मक भाव) त्रिपुरा नाम के अन्तर्गत दिखलाई है। यथा—

देवानां त्रितयी त्रयी हुत भुजां शक्तित्रयं त्रिस्वराः
त्रैलोक्यं त्रिपदी त्रिपुष्कर मथोत्रिब्रह्म वर्णास्त्रयः।
यत्किञ्चज्जगति त्रिधानियमित वस्तु त्रिवर्गात्मकम्
तत्सर्वं त्रिपुरेतिनाम भगवत्यन्वेति ते तत्वतः॥

हे भगवति संसार में जो कुछ तीन संख्या से नियमित किया हुआ (त्रिवर्गादिकं) धर्म अर्थ कामादि (वस्तु) वर्तमान है तत्सर्वं वह सब तत्वतः यथार्थ रूप से (त्रिपुरा इति-ते-नाम) तुम्हारे त्रिपुरा ऐसे नाम में ही अन्वेति प्रवेश होती है। अर्थात् जो कुछ संसार में त्रिसंख्यात्मक वस्तु है, वह भगवती के त्रिपुरा नाम से ही उत्पन्न हुई है जैसे तीन देव, तीन अग्नि, तीन शक्ति, तीन स्वर, त्रिलोकी, त्रिपदी इत्यादि।

त्रितय मात्र वस्तु की कारण श्री कामकलात्मक–महात्रिपुरसुन्दरी के वाच्य वाचक वक्तृत्व से प्रणव के अन्तर्गत तीन अक्षरों की अ, उ, म, के) और मूलाधार हृदय और भ्रूमध्यवर्ती होने से कूटत्रय की प्रणवता का प्रतिपादन करते हैं।—

आद्यो जाप्यतमार्थवाचकतया रूढ़ः स्वरः पञ्चमः
सर्वोत्कृष्टतमार्थवाचकतया वर्णः पवर्गान्तकः।
वक्तृत्वेन महाविभूतिसरणिस्त्वाधारगो हृद्गतो
भ्रूमध्यस्थित इत्यतः प्रणवता तेगीयते चागमैः॥

व्याख्या :—

हेमान्तः ! प्रणव के [ओङ्कार के] अन्तर्गत वाच्य वाचक और वक्तृ-रूप जो तीन अक्षर [अ, उ, म,] अकार, उकार और मकार, इनको तथा आधार-मूलाधार चक्र, हृदय-अनाहत चक्र, और भ्रू मध्य में आज्ञाचक्र में स्थित तुम्हारे मन्त्र के तीन कूटों की [कूट त्रय की] साम्यता समानता को चारों वेद बराबर दर्शाते हैं।

समानता के प्रकार को नीचे दर्शाते हैं :—

ओङ्कार में अ, उ, म, ये तीन अक्षर हैं, इनमें आद्य प्रथम अक्षर अर्थात् अकार 'जाप्य तमार्थ-वाचक तया–अतिशय से जपने के योग्य जो तुम्हारी मूल विद्या [पञ्चदशी मन्त्र] उसके अर्थ का [स्वरूप का] वाचक है, अर्थात् अकार

से तुम्हारे मूल मन्त्र के प्रथम कूट की समानता है, अतएव "अ. उ. म. इति ब्रह्म" यह श्रुति [वेदवाक्य] परब्रह्मात्मिका श्री महात्रिपुरसुन्दरी को ही बतलाती है।

तथा "अकारोविष्णुरुच्यते" इस आगम-कोष के अनुसार अकार का [अ. का] अर्थ विष्णु है, विष्णु का अर्थ सर्व व्यापक है, अतः अकार से विश्व व्यापिका महात्रिपुर-सुन्दरी का बोध होता है।

"तन्त्रराज" नामक तन्त्र ग्रन्थ लिखता है–कि एक समय पूर्व काल में भगवती–ललिता ने [महात्रिपुरसुन्दरी ने] पुरुष रूप में श्रीकृष्ण भगवान् का रूप धारण कर अपनी वंशी की मधुर ध्वनि से सम्पूर्ण संसार को अपने वश में कर लिया था तथाहि—

कदाचिदाद्या ललिता पुंरूपा कृष्ण विग्रहा ।
वेणुनादसमारम्भात् अकरोद्विवशं जगत् ।।इति।।

(तन्त्रराज)

संकेत पद्धति में लिखा है कि :-

"अकारः सर्व वर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः" अर्थात् अकार जो वर्णमाला का प्रथम-अक्षर है वह प्रकाश परम शिव है।

तथा शिव और शक्ति इन दोनों में भेद नहीं है, क्योंकि शिव के बिना शक्ति नहीं है और शक्ति के बिना शिव नहीं है, ये दोनों परस्पर एक दूसरे से मिले हुये हैं जैसे अग्नि और उसकी दाह शक्ति [जलाने की ताकत] तथाहि :—

न शिवेन बिना शक्तिर्न शक्तिरहितः शिवः ।
तादात्म्यमनयोर्नित्यं वह्निदाहकयोयोरिव ।।इति।।

अतः अकार श्री महात्रिपुरसुन्दरी वाचक होने से 'रूढ़:'–प्रसिद्ध है अतएव-इसलिये पञ्चमः स्वरः वर्णमाला का पांचवां स्वर [अक्षर] उकार जो कि वाच्य है, सर्वोत्कृष्टतमार्थवाचकतया'–सर्वोत्कृष्टता को प्राप्त होकर वाचकता सबसे उत्कृष्ट स्वरूपा भगवती का ही वर्णन करता है। 'तथा पवर्गान्तकः वर्णः'—पवर्ग का अन्तिम अक्षर अर्थात् मकार [म] 'वक्तृत्वेन'–वक्तृत्व से [वक्तृत्वेन वक्तृत्वं महत्वादेव] 'महाविभूति सरणिः बड़े बड़े ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाला है, 'तु'—पुनः 'आधारगः मूलाधार स्वरूप अग्निचक्र में स्थित, हृद्गतः' अनाहत स्वरूप सूर्यचक्रस्थ तथा भ्रूमध्यस्थितः आज्ञाचक्र के ऊपर सोमचक्र में स्थित, इति-इस प्रकार से मूलाधार हृदय और भ्रूमध्य में स्थित मन्त्र के तीन कूटों की और ओंकार के तीन अक्षरों की एक वाक्यता के कारण से 'ते' तुम्हारी [महात्रिपुरसुन्दरी की] प्रणवता के ओंकार स्वरूपता—'आगमैः' वेदों के द्वारा 'गीयते' घोषणा की जाती है।

इस विषय में रुद्रयामल में लिखा है :—

"उभेति परमा शक्तिः पूर्वं भावमुपेयुषी,
अध्युष्ट वलयाकारा प्रणवत्वमुपागता।
अकार रूपिण्यजरा शिवाऽनन्ता मदद्रवा ।।"इति।।

इस पद्य का सरल अर्थ निम्न प्रकार से होगा :—

हे भगवति ! ओंकार में जो अ. उ. म. ये तीन अक्षर हैं इनमें से प्रथम अक्षर अकार है वह तुम्हारे मूल मन्त्र के अर्थ का (स्वरूप का) वाचक हैं और "अ, उ, म्, इतिश्रुतिः" इस श्रुति वचन के अनुसार परब्रह्मात्मिका त्रिपुरसुन्दरी का ही वर्णन करता है तथा पांचवां वाच्य स्वर उकार भी सर्वोत्कृष्टता का वाचक होने से उत्कृष्ट स्वरूप वाली तुम्हारे ही स्वरूप का वर्णन करता है और वाचकता का द्योतक पवर्ग का अन्तिम अक्षर मकार भी अपने कर्तृत्व से महान् ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाला है, तथा 'तू'–पुनः मूलाधार, हृदय और भ्रूमध्य में अर्थात् यथाक्रम अग्नि, सूर्य और सोमचक्रों में तुम्हारे मन्त्र के तीन कूटों की क्रमशः स्थिति होने से तुम्हारी ओंकार रूपता की घोषणा चारों वेदों से की जाती है। अर्थात् मूलाधार अनाहत और आज्ञाचक्र में तीन देवों के वाचक अकार उकार और मकार की वाच्य वाचक वक्तृ रूप तुम्हारे मन्त्र के तीन कूटों के साथ एक वाक्यता है।

टिप्पणी :—

कर्तृत्वेन वक्तृत्वं महत्वादेव।

एतेषामकारोकारमकाराणां वाच्यवाचकत्वं कामकलाक्षर मूलकत्वेन त्रिकात्मकतया सांकेतितं भवति।

दुर्वासा मुनि प्रतिपादन करते हैं कि सर्वदर्शनों के अधिदेवता गायत्री आदि श्री महात्रिपुरसुन्दरी के ही रूप हैं।

गायत्री सशिरा तुरीयसहिता सन्ध्यामयीत्यागमै,
राख्याता त्रिपुरेत्वमेवमहतां शर्मप्रदा कर्मणाम्।
तत्तद्दर्शनमुख्यशक्तिरपि चत्वं ब्रह्म कर्मेश्वरी,
कर्तार्हन्पुरुषो हरिश्च सविता बुद्धः शिवस्त्वंगुरुः

व्याख्या :—

हे त्रिपुरे ! त्रितय मात्र वस्तु जिसका शरीर है, भगवती के लिए सम्बोधन, 'सन्ध्यामयी' त्रिकाल सन्ध्यारूपा अर्थात्, गायत्री, सावित्री और सरस्वती स्वरूपिणी 'सशिरा' शिरसा सहिता, शिर के साथ अर्थात् "ॐ आपोज्योती रसो ऽमृतम्" इस पद के साथ इस पद का नाम शिर है, 'तुरीय सहिता, 'ओंकार के सहित, गायत्री' ब्रह्म विद्या गायत्री मन्त्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जिस मन्त्र का जप करते हैं 'आगमैः आख्याता'–वेदों द्वारा तुमही प्रसिद्ध की गयी हों। तथा 'त्वमेव'–मूलविद्या स्वरूपिणी तुमही 'महतां याग आदि बड़े बड़े कर्मों की (क्रियाओं की) शर्मप्रदा सुखरूप फ़ल देने वाली हो। तत्तद्दर्शन मुख्य शक्तिरपि, उन उन प्रसिद्ध दर्शनों (दर्शनशास्त्रों) में प्रतिपादित मुख्यशक्ति प्रमुख देवता भी तुम ही हो अर्थात् दर्शनशास्त्र भी तुम्हारा (श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी को) ही प्रतिपादन करते हैं–इसी बात को और स्पष्ट करते हैं :– वेदान्त दर्शन से प्रतिपादित ब्रह्म मीमांसा से निरूपित कर्म, शाक्तदर्शनाधिष्ठित भुवनेश्वरी (ईश्वरी) नैयायिकों का कर्त्ता, (चार्वाकों) का भौतिकवाद, जैनों का अर्हन् सांख्य दर्शन का पुरुष वैष्णवों का विष्णु (हरि) सौर दर्शन का अधिष्ठाता

सविता—सूर्य, बौद्ध लोगों का भगवान् बुद्ध शैवदर्शन का शिव 'त्वं' त्वमेव तुमही गुरु गणेश हो, सबके प्रथम पूज्य होने से यहाँ पर गुरु का अर्थ गणेश किया गया है। अतएव स्वर्गीय पूज्य पितृपाद पं० हरिकृष्ण दौर्गादत्ति जी ने अपनी पुस्तक के मङ्गलाचरण में श्री ७ गणेश जी के लिये लिखा है—

एकं सच्चिन्मयं ब्रह्म देवादिपशुयोनिषु,
दर्शयन्तं स्वरूपेण गुरुं गजमुखं भजे ॥ इति

अर्थात् देवों से लेकर पशुओं पर्यन्त सबके भीतर सच्चिन्मय एक ब्रह्म है, इस बात की शिक्षा अपने स्वरूप से दे रहे गुरु श्री गणेश जी को मैं प्रणाम करता हूँ। शिक्षक गुरु होता है।

सरलार्थ :— इस पद्य का सरल संक्षिप्त अर्थ निम्न प्रकार से होगा—

हे त्रिपुरे ! तुम ओंकार से युक्त सिर के सहित त्रिकाल संध्यारूपिणी गायत्री रूपा हो तथा बड़े बड़े यज्ञ, याग आदि कर्मों से [क्रियाओं से] सुख रूप फल की देने वाली भी तुम्हीं हो। नाना प्रकार के दर्शनशास्त्रों से प्रतिपादित अधिदेवता भी [मुख्यशक्ति] तुम्ही हो—अर्थात् वेदान्तियों का ब्रह्म मीमांसकों का कर्म शाक्तों की शक्ति (भुवनेश्वरी) नैयायिकों का कर्ता चार्वाकों का भौतिकवाद जैनों का अर्हन्, साँख्य दर्शन का पुरुष वैष्णवदर्शन का विष्णु [हरि], सौर दर्शन का सूर्य [सविता] बौद्ध लोगों का बुद्ध, और शैवागमों का [शैवदर्शन का] शिव एकमात्र तुम (श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी) ही हो। तथा सबसे पहिले सबका पूज्य होने से श्री गणेश भी श्री महात्रिपुरसुन्दरी स्वरूप हैं अर्थात तुम ही हो।

टिप्पणी :—

तुरीय सहिता–तुरीय(चतुर्थ अक्षर के (ईकार के)साथ) तुरीय बीज प्रणव है, यह बात आठवें पद्य में दिखला दी गयी है, कार्य और कारण में भेद न होने के कारण रूप तुरीयाक्षर [ईकार] का कार्य रूप प्रणव (ओङ्कार है) अतः तुरीय का अर्थ प्रणव है।

तथा तुरीय पद से तुरीया संध्या और तुरीया चतुष्पदी गायत्री के ओर भी संकेत है। जैसे कि श्रुति कहती है "ॐ गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्य पदसि" इत्यादि अर्थात् तुरीय ब्रह्म रूप चतुर्थ चरण से चतुष्पदी हो तथा विराट् हिरण्यगर्भ, ईश्वरी और परब्रह्मरूपा होने के कारण तुम चार पैर वाली हो एवं चतुष्पदी की दो व्याख्या हैं।

तथा तुरीयपाद से विन्दु त्रयात्मक काम कलाक्षर की ओर भी संकेत हैं। अतएव—

तुरीया कापित्वं दुरधिगम निस्सीम महिमा
महामायाविश्वं भ्रमयसि परब्रह्म महिषि।

(सौन्दर्यलहरी)

आगमैः आख्याता–आगमैः आगमज्ञैः आख्याता प्रसिद्धी कृता,-अर्थात् आगम के विद्वानों से प्रसिद्ध की गयी। यहाँ गायत्री को मूल विद्या पञ्चदशी स्वरूपिणी माना गया है, पञ्दशी मन्त्र त्रिकूटात्मक है और गायत्री भी त्रिपदी है। संध्यात्रय से काल की समानता है।

"सशिरा तुरीय सहिता" इन पदों से पञ्चमी विद्या की ओर भी संकेत मिलता है। पञ्चमी विद्या पञ्चकूटात्मिका है, अतएव श्री महात्रिपुरसुन्दरी के त्रैलोक्य मोहन कवच में–पहिले लिखा है—

"वदनं में सदापातु पंचकूटातु पंचमी ।। इति

तथा वामकेश्वर तन्त्र में भी लिखा है—

"त्रिकूटमेक कूटंच त्रिकूटे पंचकूटता ।। इति

तत्तद्दर्शन मुख्य शक्तिरपिच–इस पद से यहाँ पर दक्षिणामूर्ति मत से महात्रिपुरसुन्दरी के दश आवरण चरणों में दस दर्शनों की पूजा का-क्रम दिखाया गया है—

प्रथमावरण	पूजा	में–चार्वाक दर्शन की पूजा	
द्वितीयावरण	"	स्मृति दर्शन	"
तृतीयावरण	"	बौद्ध दर्शन	"
चतुर्थावरण	"	गाणपत्य दर्शन	"
पञ्चमावरण	"	सांख्य दर्शन	"
षष्ठावरण	"	वैदिक दर्शन	"
सप्तमावरण	"	सौर दर्शन	"
अष्टमावरण	"	वैष्णव दर्शन	"
नवमावरण	"	शाक्त दर्शन	"
दशमावरण	"	शैव दर्शन	"
एकादशावरण	"	० २४ गायत्री वर्ण मातृका तथा चतुष्पदी गायत्री की पूजा।	
द्वादशावरण	"	कालिका आदि दश महाविद्याओं की पूजा	
त्रयोदशावरण	"	कौल दर्शन की पूजा	
चतुर्दशावरण	"	षट् चक्र एवं डाकिनी आदियों की पूजा	
पञ्चदशावरण	"	पञ्च पञ्चिका पूजा	
षोडशावरण	"	दिग्पालों की तथा उनके आयुधों की पूजा	

मतमतान्तर से केवल षड् दर्शनों की–१-बौद्ध, २-वैदिक, ३-शैव, ४-सौर, ५-वैष्णव और ६-शाक्त दर्शन की पूजा होती है।

हमारा लक्ष्य केवल दर्शनों की पूजा दिखाने का है कि किस दर्शन की किस आवरण में पूजा होती है अन्यथा एक पूजापद्धति तैयार हो जायगी।

"पञ्च पंचाक्षरैर्मन्त्रै पंचकूटैश्च पंचभिः।
पंचमी पातु सततं नित्यं रक्षतुपंचमी ॥१६४॥

(त्रिपुरास्तवराजे)

कवि अब दर्शाता है कि पञ्चकोशों के द्वारा भगवती विश्व शरीर में विलीन रहती है—इस बात को जानने वाला साधक ही ब्रह्मज्ञ है ।

अन्नप्राणमनः प्रबोधपरमानन्दैः शिरः पक्षयु—
क्पुच्छात्म प्रकटै र्महोपनिषदा वाग्भिः प्रसिद्धीकृतैः ।
कोशैः पञ्चभिरेभिरम्ब भवतीमेतत्प्रलीनामिति
ज्योतिः प्रज्वलदुज्ज्वलात्म चपलां यो वेद स ब्रह्मवित् ।२१।

व्याख्या—

हे अम्ब हे मातः ! मानव शरीर में अन्नमय (अन्न से बने हुये) कोश को शिर, प्राणमय (प्राणों से-बने हुये) कोश को और मनोमय (मन से बने हुये) कोश को, अर्थात् प्राण-मय और मनोमय इन दो कोशों को दो पक्ष(दोपर)प्रबोध-विज्ञान अर्थात् विज्ञान मय कोश को पुच्छ (पूंछ) और परमानन्द-आनन्द मय कोश को आत्मा प्रतिपादन करने वाले बड़े-बड़े उपनिषदों के वाक्यों से प्रसिद्ध, किये गये अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञान-मय और आनन्दमय इन पाँच प्रकार के कोशों-द्वारा इस विश्व शरीर में लीन (प्रविष्ट, व्याप्त)—परं ज्योतिर्मय प्रकाश पुञ्ज से देदीप्यमान आत्मा—वाली तुमको जो उपासक श्री गुरुदेव द्वारा सविधिदीक्षा ग्रहण कर, जानता है अर्थात् तुम्हारे स्वरूप को पहिचानता है वही (उपासक) वास्तव में ब्रह्मवेत्ता है । जिसने तुमको जान लिया उसने ब्रह्म का भी

ज्ञान प्राप्त कर लिया, अर्थात् तुममें और ब्रह्म में भेद नहीं है तुमही परब्रह्म स्वरूपिणी हो।

पञ्चकोशों की विशेष व्याख्या :—

मनुष्य के शरीर में पांच कोश शास्त्रकारों ने माने हैं इनमें सबसे पहिला अन्नमय (अन्न से बना हुआ) कोश है अर्थात् अन्न से उत्पन्न हुआ यह देह ही अन्नमय कोश है। पञ्च भूतों से निर्मित तथा अन्न से परिपुष्ट हुआ मानव का स्थूल देह ही अन्नमय कोश है।

प्राणमय कोश—पञ्चकर्मेन्द्रियों से युक्त यह प्राण (पञ्चप्राण) ही प्राणमय कोश कहलाता है, प्राणमय कोश से युक्त होकर उपरिलिखित अन्नमय कोश अन्न से तृप्त होकर समस्त कार्यों के करने में प्रवृत्त होता है।

मनोमय कोश—पञ्च ज्ञानेन्द्रियां और मन (यह मन ही मैं, मेरा, इत्यादि संकल्प विकल्प का कारण) मनोमय कोश है। यह पूर्वोक्त अन्नमय और प्राणमय कोशों में व्याप्त होकर रहता है।

विज्ञानमय कोश—ज्ञानेन्द्रियों के साथ वृत्तियुक्त बुद्धि ही कर्त्तृत्व स्वभाव सम्पन्न (अहंकार सें युक्त) विज्ञान मय कोश है। यह (कोश) ही पुरुष के जन्म और मरण का कारण है, अर्थात् संसार में मनुष्य का जन्म और मरण इसके ही कारण होता है लिखा भी है—

बुद्धिर्बुद्धीन्द्रियैः सार्धं सवृत्तिः कर्तृलक्षणः।
विज्ञान मय कोशः स्यात्पुंसः संसार कारणम्॥ इति॥

(विवेक चूड़ामणि)

आनन्दमयकोश–आनन्द स्वरूप आत्मा के प्रतिबिम्ब से चुम्बित तथा तमोगुण से प्रकट हुयी वृत्ति आनन्दमय कोश है ।

वह प्रिय आदि [प्रिय, मोद और प्रमोद-इन तीन] गुणों से युक्त है और अपने अभीष्ट पदार्थ के प्राप्त होने पर प्रकट होती है । पुण्य कर्म के परिपाक होने पर उसके फ़ल स्वरूप सुख का अनुभव करते समय भाग्यवान पुरुषों को उस आनन्दमय कोष का स्वयं अनुभव होता है जिससे-सम्पूर्ण देहधारी जीव बिना प्रयत्न के ही अति आनन्दित होते हैं । [विवेक चूड़ामणि हिन्दी अनुवाद सहित]

मानव शरीर में स्थित इन पञ्च कोशों को रूपक द्वारा वेदों ने एक पक्षी की आकृति माना है । पक्षी के शरीर के मुख्य अङ्ग शिर, दो बड़े पक्ष [बाजू के दो बड़े पंखर डैंने] पूँछ और उसके शरीर के भीतर हृदय में (हृदयाकाश में) स्थित आत्मा है । अतएव ऊपर के श्लोक में अन्न मय कोश कोशिर प्राणमय और मनोमय कोशों को दो पक्ष [पर] विज्ञान मय को पूँछ और आनन्द मय कोश को आत्मा दर्शाया है ।

इस बात की पुष्टि मुण्डकोपनिषद् में की गई है:—"यः सर्वज्ञः सर्व विद् यस्यैष महिमा भुवि दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्नि आत्मा प्रतिष्ठतः । मनोमयः प्राण शरीर नेता प्रतिष्ठितोऽन्मे हृदयं सन्निधाय । तद् विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपं अमृतं यद् विभाति" ।। ७ ।।

श्री पीताम्बरा पीठ दतिया मध्य प्रदेश के मुख्याधिष्ठाता श्री १००८ स्वामी जी महाराज इसके भाष्य में लिखते हैं:—आत्मनो याथात्म्यं पञ्चकोशविवेकेनाह एष आत्मा व्योम्नि हृदयाकाशेऽन्तर्यामिरूपेण प्रतिष्ठितः।

अन्ने प्रतिष्ठितः अन्नमय रूपेण मनोमयः प्राण शरीर नेता प्राणमय कोशेन हृदयं सन्निधाय चित्तवृति सम्यङ् निरुध्य धीराः ब्रह्म विदः तद् ब्रह्मतत्वं विज्ञानमय कोशस्थ जीव ब्रह्मैक्य बोधेन परं सर्वेभ्यः परमानन्द रूपममृत यद् विभाति तत्परिपश्यन्ति साक्षात् कुर्वन्ति इत्यर्थः कोशानां पञ्चत्वेन स्वीकारात्" ॥७॥ इति

श्री देवी भागवत में चतुर्थ स्कन्ध के पन्द्रहवें अध्याय में इन्द्र भगवती की स्तुति करता है :—

महाकुण्डलिनी रूपे सच्चिदानन्द रूपिणि !
प्राणाग्नि होत्र विद्ये ते नमो दीपशिखात्मिके ॥१३॥
पंचकोशान्तरगते पुच्छे ब्रह्मस्वरूपिणि ॥
आनन्दकालिके मातः सर्वोपनिषदर्चिते ॥१४॥

इस स्तुति में भगवती कुण्डलिनी रूपा सच्चिदानन्द मयी, प्राणाग्नि होत्र विद्या, दीपशिखास्वरूपा, पञ्चकोशान्तरगता और पुच्छ ब्रह्म रूपिणी आनन्द कालिका तथा सब उपनिषदों से (वेदों से) प्रतिष्ठित कही गयी है।

सप्तम स्कन्ध में भी पुनः -

"पञ्चकोशान्तरगतां पुच्छ ब्रह्म स्वरूपिणीम् ॥ कहा गया है। यहाँ पर राजा हरिश्चन्द्र अपने मृत पुत्र के शव को

चिता में रखकर अपनी महारानी शैव्या के साथ चिता में बैठने से पूर्व श्री भगवती की स्तुति करते हैं– [देवी भागवतान्तर्गत हरिश्चन्द्रोपाख्यान]।

श्री ललिता सहस्त्रनाम में "पञ्चकोशान्तरस्थिता" भगवती को इस नाम की व्याख्या में श्री भास्कर राय भारती लिखते हैं :—

"पुच्छ ब्रह्म पक्षेतु पञ्चानाम् अन्तरे मध्ये स्थिता इत्यर्थः [अर्थात् पुच्छ ब्रह्म के पक्ष में पांच कोशों के मध्य में स्थित भगवती) युक्तञ्चैतत्। ब्रह्म गीतायां तथैवोपब्रह्मण-दर्शनात्। तदुक्तम्।

"तथानन्द मयञ्चापि ब्रह्मणान्येन साक्षिणा।
सर्वोत्तरेण सम्पूर्णो ब्रह्मनान्येन केन चित्॥
यदियं ब्रह्म पुच्छाख्यं सत्यज्ञानद्वयात्मकम्।
सरसः सर्वदा साक्षान्नन्यथा सुरपुंगवा॥ इति
क्रोध भट्टारका अप्याहुः "अन्नप्राण मनः प्रबोध परमाऽऽ नन्दैः शिरः पक्ष युक्" इत्यादि

प्रथम पद्य से इक्कीसवें पद्य पर्यन्त जिस रहस्य का प्रतिपादन किया गया है उसमें दीक्षित पुरुष का ही अधिकार है, दूसरे का नहीं, अतएव अब इस पद्य में सद्गुरु से दीक्षा प्राप्ति की आवश्यकता तथा दीक्षा द्वारा फल प्राप्ति का प्रतिपादन करते हैं ।—

सच्चित्तत्वमसीतिवाक्यविदितैरध्यात्म विद्याशिव–
ब्रह्माख्यैरतुल प्रभावसहितैस्तत्त्वैस्त्रिभिः सद्गुरोः ।
तद्रूपस्य मुखारविन्दविवरात् सप्राप्य दीक्षामतो
यस्त्वांविन्दति तत्त्वतस्तदहमित्यार्थे स मुक्तोभवेत् ॥२२॥

व्याख्या : —

हे आर्ये ! आर्या-सबसे उत्कृष्ट, सम्बोधन में आर्ये हे भगवति ! 'अतुल प्रभाव सहितै'–स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण स्वरूप देह चतुष्टय शुद्धि द्वारा जीवन मुक्ति प्रदान के महा प्रभाव से युक्त, 'सच्चित् तत्वमसीतिवाक्यविदितै' :– सत् [ब्रह्म] चित् [माया] तत् [मायातीत माया से परे त्वं [स्वयं] असि [सर्वज्ञत्व] अर्थात १ सच्चित्, २ तत्, ३ त्वं, ४ असि, इन चार वाक्यों से विदित, [जाने गये प्रसिद्ध] आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व, शिवतत्त्व तथा सर्व तत्त्व [समष्टितत्त्व जीवात्मा और परमात्मा का ऐक्य [ब्रह्म] नाम वाले 'त्रिभिः तत्त्वैः'–आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व इन तीन तत्वों से वास्तव में चतुर्थ तत्त्व पूर्वोक्त आत्मा विद्या और शिव तत्त्वों का ही समष्टि रूप जीवात्मा और परमात्माका ऐक्य [ब्रह्म]

तत्त्व है, अतएव 'तत्त्वैस्त्रिभिः' — तीन तत्त्वों से कहा गया है। 'तद्रूपस्यब्रह्मरूपस्य'–अर्थात् ब्रह्म स्वरूप 'सद्गुरोः–सद्गुरु के, भगवती ब्रह्मस्वरूपिणी है, भगवती और गुरु में भेद नहीं है।

"भेदकृत् पापकृद् भवेत्"

अर्थात् गुरु, मन्त्र और देवता में भेद बुद्धि रखने वाला पापी होता है, अतः भगवती स्वरूप सद्गुरु के अर्थात् पूर्णाभिषेक दीक्षा ग्रहण करने के प्रभाव से जिसको देवी तादात्म्य प्राप्त हो गया है, अतएव लिखा भी है–"यो यच्छ्रद्धः स एव सः" अर्थात् जिसकी जिस पर तन, मन. धन और जन से सर्वतोभाव से श्रद्धा हो जाती है वह उसका ही रूप हो जाता है, ऐसे सद्गुरु के 'मुखारविन्द विवरात्'–मुख कमल द्वारा यथाक्रम क्रमदीक्षा समाप्ति पर पूर्णाभिषेक दीक्षा प्राप्त करने के उपरान्त 'यः–' जो उपासक भावना द्वारा 'तत्त्वत': वास्तव में [यथार्थ में] 'तदहं'–तत् वह ब्रह्म अहं अहमेव मैं ही हूं अर्थात् मैं ही भगवती स्वरूप परब्रह्म 'इति'–एवं प्रकार से त्वां [तुम्हें भगवती को] 'विन्दति' भावना से जानता है [पहिचानता है] 'स'–वह दीक्षा प्राप्त साधक 'मुक्तो भवेत'–जीवन मुक्त हो जाता है। अतएव भावना के विषय में शास्त्र निर्देश करता है—

"अहं त्वंत्वमहं देवि दिष्टद्य भेदोस्तिनावयोः।
दिष्टचा मत्तां प्रयातासि दिष्टचा त्वत्तामहं गतः
तुभ्यं मह्यमनन्ताय मह्यं तुभ्यं शिवात्मने।
नमो देवाधिऽदेवाय पराय परमात्मने ॥इति॥

(हमारी प्राचीन पूजा पद्धति)

अर्थात् हे देवि ! मेरा रूप तुम्हारा रूप है और तुम्हारा रूप मेरा रूप है याने तुम और मुझमें भेद नहीं है हम दोनों एक ही हैं अतः अनन्त और शिवरूप तुम्हारे लिये और मेरे लिये नमस्कार हो।

संक्षिप्तार्थ.—

संक्षप में इस पद्य का अर्थ निम्नलिखित प्रकार से होगा— हे आर्ये ! स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण शरीरों के संशोधक अतएव बड़े प्रभावशाली सत्-ब्रह्म, चित्-माया, तत्-मायातीत, त्वं-स्वयं, असि सर्वज्ञत्व, इन महा वाक्यों से प्रसिद्ध तीन—आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्वों से (अर्थात् उन तत्त्वों के द्वारा) तत्स्वरूप परब्रह्म स्वरूपिणी भगवती स्वरूप श्री गुरुदेव के मुखारविन्द द्वारा पूर्णाभिषेक दीक्षा को प्राप्त कर जो उपासक यह भावना करता है कि मैं स्वयं ही ब्रह्म स्वरूपिणी त्रिपुरसुन्दरी स्वरूप हूं वह पूर्णाभिषिक्त साधक जीवनमुक्त होता है।

टिप्पणी:—

"सच्चित् तत्वमसि–इति वाक्य विदिते":—पूर्णाभिषेक में वैदिक महावाक्यों का भी उपदेश होता है। अतएव 'तत्त्वमसि' यह सामवेद का महावाक्य है। इस महावाक्य से ही विदित होता है कि "तद्रूपस्य मुखारविन्द विवरात्संप्राप्य दीक्षामतो" यहां पर 'दीक्षा' शब्द से पूर्णाभिषेक दीक्षा ली गयी है। यतः पूर्णाभिषेक में ही "प्रज्ञानंब्रह्म" "अहं ब्रह्मास्मि" "अयमात्माब्रह्म" "तत्त्वमसि" इन चारों वेदों के चार महा वाक्यों का उपदेश होता है। पुनः "तत्त्वत स्मदमित्यार्ये" यहां पर 'तदह' तद् ब्रह्म अहमेव से "अहं ब्रह्मास्मि" की भावना की जाती है। अतः भगवान् क्रोध भट्टारक का संकेत यहां पर दीक्षा से पूर्णाभिषेक दीक्षा की ओर है।

महानिर्वाण तन्त्र में पूर्णाभिषेक का महात्म्य निम्नलिखित है:—

पूर्णाभिषिक्तः सत्कौलो यस्मिन् देशे विराजते ।
धन्यो मान्यः पुण्यतमः स देशः प्रार्थ्यते सुरैः ।।
कृतपूर्णाभिषेकस्य साधकस्य शिवात्मनः ।
पुण्यपापविहीनस्य प्रभावंवेत्ति को भुवि ।।
केवलं नररूपेण तारयन्नखिलं जगत् ।
शिक्षयन् लोकयात्रां च कौलो विहरतिक्षितौ ।।
सार्द्धत्रिकोटितीर्थानि ब्रह्माद्याः सर्वदेवताः ।
वसन्ति कौलिके देहे किन्न स्यात् कौलिकार्चनात् ।।

(दशमोल्लास से)

नाभिषेकं विना कौलः केवलं मद्यसेवनात् ।
पूर्णाभिषेकात् कौलः स्यात् चक्राधीशःकुलार्चकः।इति।

चतुर्थ समष्टितत्व शोधन मन्त्र:—

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं मूलं-क १५ प्रकृत्यहङ्कार······शिवशक्ति सदा शिवेश्वर शुद्ध विद्यत्मने अं १६ कं० चं० टं० तं० पं० यं० इं० लं० वं शं षं सं हं लं क्षं सर्व तत्वाय सर्वत्वात्मने विश्वतैजस प्राज्ञपुरुषायविश्व तैजस प्राज्ञ पुरुषात्मने सरस्वती हिरण्यगर्भ लक्ष्मीनारायण विद्याशंकर सहितात्मने आणव कार्मण मायिक मलशोधनार्थ स्थूल सूक्ष्म कारण महाकारण सर्वभागे जीवात्म परमात्मनोरैक्येन सर्व तत्वेन सर्व देहं सर्वदेहाभिमानिनं जीवात्मानं परिशोधयामि जुहोमि स्वाहा ।

आर्द्रं ज्वलति ज्योतिरहमस्मि ज्योतिर्ज्वलति ब्राह्मा-

ऽहमस्मि, अहमस्मि, ब्रह्माऽहमस्मि, अहमेवाहं मांजुहोमिस्वाहा, इति मन्त्रेण तुरीयया विद्यया 'आत्मा मे शुध्यताम्' इति मन्त्रान्तेन च जुहुयात् । कुण्डलिनी मुखे इति शेषः ।

वेदान्त में ब्रह्मज्ञान होने पर भी प्रारब्ध का भोग भोगना ही पड़ता है, किन्तु श्री विद्योपासना में ऐसा नहीं होता है । कौलावधूत अपने तथा दूसरे के बने हुये प्रारब्ध को भी रोक सकता है ।

विश्वामित्र ऋषि ने जिस प्रकार दूसरे स्वर्ग की रचना कर दी थी उसी प्रकार कौलावधूत भी दूसरे प्रारब्ध की रचना करने के लिये समर्थ होता है ।

तन्त्रान्तर में श्री विद्या के विषय में लिखा है कि "कर्म रेखा नाशकर्त्री कर्मरेखा विनोदिनी" इति । अर्थात् भगवती महात्रिपुरसुन्दरी (श्री विद्या) कर्मरेखा की (प्रारब्धकी) नाश करने वाली तथा कर्म रेखा से विनोद करने वाली है ।
(तान्त्रिकोपासना दर्पण द्वितीय भाग)

नेपाल के राजर्षि ले० जनरल श्री धन शमशेरजङ्ग बहादुर राणा साहब ने इस पुस्तक के नवम पटल में श्रीविद्या विषय पर गम्भीर रहस्यपूर्ण विवेचना की है, जो अवलोकनीय है ।

मुक्ति प्राप्ति के लिये अल्पायास साध्यन्यास पूजा-विस्तार से रहित शैव, वैष्णव, सौर आदि मार्गों की विद्यमानता में अनायास साध्यन्यास पूजा आदि व्यापार से अपार मेरे इस मार्ग में क्यों इतना आदर करते हो ? भगवती के उक्त प्रकार के आक्षेप में उत्तर में देशिक प्रवर श्री दुर्वासा मुनि का सविनय निवेदन है :—

सिद्धान्तैर्बहुभिः प्रमाण गणितै रन्यैरविद्यातमो—
नक्षत्रै रिव सर्वमन्धतमसं तावन्न निर्भिद्यते ।
यावत्ते सवितेव संमतमिदं नोदेति विश्वान्तरे
जन्तोर्जन्म निवारणैकभिदुरं श्रीशांभवि श्रीशिवे ॥

व्याख्या :—

हे श्री शाम्भवि ! हे शम्भु पत्नि ! अथवा 'शाम्भवानाँ इयं माता शाम्भवी' शाम्भव पुरुषों की (शाक्तों की) माता, श्री शाम्भवि ! श्री शिवे ! 'श्री युक्ता शिवा' हे मङ्गलरूपिणी ! हे मङ्गलमयि ! "शिवेति मङ्गलं नाम" —

'आन्यैः'—दूसरे 'प्रमाणगणितैः'—प्रत्यक्ष अनुमान उपमान आदि प्रमाणों से सिद्ध किये गये 'वहुभिः'—नाना प्रकार के (बहुत) 'सिद्धान्तैः'—न्याय वेदान्त आदि शास्त्रों के द्वारा स्वीकार किये गये सिद्धान्तों से (नियमों से) अविद्यारूपी अन्धकार. 'नक्षत्रैः—असंख्य ताराओं से 'सर्वमन्धतमसं'—सम्पूर्ण गाढ़ा अन्धकार (अंधेरा) ध्वान्ते गाढ़ेऽन्धतमसं)

'तावत्'—तब तक न 'निर्भिद्यते'–दूर नहीं किया जा सकता है 'यावत्'–जब तक 'विश्वान्तरे'–सम्पूर्ण संसार में–'सविता' इव' सूर्य के समान अर्थात् गगन मण्डल में अगणित तारागण के रहते हुये भी बिना सूर्योदय के संसार का प्रगाढ़ अन्धकार दूर नहीं होता है, एवमेव यावत् जब तक संसार में 'जन्तोः'–सांसारिक प्राणियों का अर्थात् मनुष्यों का 'जन्म' निवारणैक भिदुरं'—आगामी जन्मों के निवारण में (पुनर्जन्म न होने देने में) अद्वितीय सामर्थ्य–रखने वाला 'ते' तेरा 'इदं संमतं–सब मतों में उत्तम (सर्वश्रेष्ठ) यह तेरा मत (तेरी उपासना का सिद्धान्त) 'विश्वान्तरे' संसार में तथा [विशेषेण स्वान्तरे] अर्थात् जीवन्मुक्ति की अपेक्षा करने वाले साधक के हृदय में जब तक न 'उदेति' न उदय होता है अर्थात् प्रचार नहीं होता है तब तक अविद्यान्धकार दूर नहीं होता।

संक्षिप्तार्थ :—

इस पद्य का अर्थ संक्षेप में निम्नलिखित होगा :—

हे श्री शिव महाराज की महारानी शाम्भवों की जननी श्री शिवे ! सम्पूर्ण जगत में व्याप्त अँधेरा बिना सूर्योदय के जिस प्रकार आकाश में चमकने वाले हजारों नक्षत्रों (तारामण्डल) से दूर नहीं होता है एवमेव नाना प्रकार के सिद्धान्तों तथा अनेक प्रकार के प्रत्यक्षानुमान आदि प्रमाणों से संसार में फैला हुआ अविद्यारूपी महान्धकार तब तक दूर नहीं होता जब तक मनुष्यों के पुनर्जन्म को नष्ट करने में सिद्धहस्त सब मतों में उत्तम मत (उपासना) का जीवन्मुक्ति

के अभिलाषी साधक हृदय में सूर्य के समान उदय नहीं होता है अर्थात् प्रचार नहीं होता है—

टिप्पणी :—

श्री शाम्भवि ! इस पद पर टीकाकार ने लिखा है—"इदं हेतु गर्भ विशेषणम् । अनेनषडन्वय शाम्भव पर्यन्तं ज्ञानं त्वन्मत निर्वाहकम्"

पाठकों की जानकारी के लिये शाम्भव नीचे लिखे जाते हैं :—

क्रमदीक्षा मुख्यतः द्वादश प्रकार की है, उसमें प्रथम विद्याक्रम ६ प्रकार का है, जैसे कि लिखा है:—

सर्वाम्नाय प्रभेदेन षड्धा विद्याक्रमः स्मृतः ।
पूर्वाम्नाये चोन्मनीच पूर्णेशी भुवनेश्वरी ।
द्वीपशाम्भवकं दिव्यं लिंगमूले व्यवस्थितम् ।
आद्या श्यामा दक्षिणाच्च दक्षिणाम्नायवर्त्मनि ।
संवर्तशाम्भवं दिव्यं मणिपूरे व्यवस्थितम् ।
पश्चिमे कुब्जिका वज्र कुब्जिकाऽघोर कुब्जिका ।
सर्वाधिकार विद्याख्यं शाम्भवं चतुरन्वयम् ।
उपमार्गे महापूर्वा काली लक्ष्मी सरस्वती ।
चामुण्डाच महाविद्येश्वराख्यं शाम्भवं हृदि ।
उत्तरे सिद्धि लक्ष्मीश्च महासिद्धि करालिका ।
कामकला गुह्यकाली हंसशाम्भव कण्ठजम् ।
ऊर्द्ध्वे बाला पञ्चदशी षोडशी परशाम्भवम् ।
आज्ञा चक्रेस्थितं दिव्यं श्री विद्या क्रमसंयुतम् ।

अर्थात् पूर्वाम्नाय में द्वीपेश्वर शाम्भव, दक्षिणाम्नाय में संवर्तेश्वर शाम्भव, पश्चिमाम्नाय में चतुरन्वय शाम्भव उपाम्नाय में महाविद्ये (विच्चे)श्वरशाम्भव, उत्तराम्नाय में हँसेश्वर शाम्भव और ऊद्ध्वाम्नाय में परेश्वरशाम्भव हादिनव क्रम में, कादि नवचक्र में महाक्रम में और पूर्णक्रम में षड़न्वय शाम्भव दीक्षा लेकर सर्वाधिकार दीक्षा होती है। इस प्रकार श्री विद्या विषय में षड़न्वय शाम्भव पर्यन्त ज्ञान श्री विद्या मत का निर्वाहक टीकाकार ने ठीक लिखा है। इस विषय में पूर्ण ज्ञान प्राप्ति के लिये संवत् २००१ मार्ग शीर्ष शुक्लाष्टमी की 'चण्डी' पत्रिका में 'क्रमदीक्षाक्रम' नामक हमारा लेख पढ़ने से षड़न्वय शाम्भव आदि अन्य शाम्भवों का ज्ञान हो सकता है।

जीवन्मुक्ति के अभिलाषी साधक को अविद्या विनाश के लिये आत्मानुसंधान (आत्म विचार) ही मुख्य साधन है, अतएव उपनिषद् भी कहते हैं कि आत्मा के विषय में श्रवण, मनन, और निदिध्यासन ही आवश्यक है, तब अत्यन्त दुर्घट मेरी उपासना में क्यों इतना आदर करते हो ? भगवती के इस आग्रह के उत्तर में साधक शिरोमणि दुर्वासा मुनि सादर निवेदन करते हैं :—

आत्मासौ सकलेन्द्रियाश्रयमनोबुद्धयादिभिः शोचितः
कर्माबद्धतनुर्जनिं च मरणं प्राप्नोति यत्कारणम्
तत्तेदेवि महाविलास लहरी दिव्यायुधानां जय-
स्तस्मात्त्वां गुरुमभ्युपेत्य कलयेत्वामेवचेन्मुच्यते

व्याख्या :—

हे देवि ! सकल—सम्पूर्ण इन्द्रिय अर्थात् श्रवण, त्वचा, नेत्र, घ्राण और जिह्वा ये पाँच ज्ञानेन्द्रिय, तथा वाक्, पाणि पाद, गुदा और उपस्थ ये पाँच कर्मेन्द्रिय तथा इन (इन्द्रियों) के आश्रय अन्तःकरण चतुष्टय (मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार) से 'शोचितः'—दुःख को प्रापित (पहुँचाया गया) संसार में भले और बुरे कर्मों के आचरण से जिसका शरीर बँध गया है अर्थात् जिसके संस्कार जड़ हो गये हैं, अतएव जो आत्मा बार बार जन्म और मरण को जिस कारण से प्राप्त होता रहता है वह (कारण) तेरे महाविलास के नित्य नूतन नवविध श्रृङ्गार सौन्दर्य सागर की तरङ्गों के समान दिव्य अप्रतिहत शक्ति [सामर्थ्य] [दोनों का तरंग, और आयुधों का विशेषण] वाले आयुध [भगवती के चार हाथों में चार आयुध] [हथियार—अस्त्र] पाश, अँकुश, धनुष और बाण का जय [प्रताप] है अर्थात् जो एकदम अपने लक्ष्य का

[निशाने का] मोहन, वशीकरण, मारण और स्तम्भन आदि कार्य कर बैठते हैं, तत् [तस्मात् कारणात्] इस कारण से 'त्वां गुरुं, तेरी उपासना करने से जो तेरे तादात्म्य को प्राप्त हो गया है अर्थात् तद्रूपता को [तेरे रूप को] प्राप्त हो गया है ऐसे गुरू को 'अभ्युपेत्य'—अत्यन्त आराधना कर 'त्वामेव' तुझ महात्रिपुर सुन्दरी को ही 'कलयेत् अर्थात् तेरा ही भजन करे 'चेत् तो (तव) 'मुच्यते' मुक्ति प्राप्त होती है (अर्थात् साधक को) अन्यथा मुक्ति नहीं मिलती है।

संक्षेप में इस पद्य का सरल अर्थ निम्नलिखित होगा :—

हे देवि ! कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों के आश्रयी भूत मन, बुद्धि; चित्त और अहङ्कारों से दुःखित तथा संसार में ऐहलौकिक और पारलौकिक कर्मों के कारण जो आत्मा जन्म और मरण को प्राप्त होता रहता है, उसका कारण तेरे महाविलास रूपी समुद्र की अप्रतिहत शक्तिशाली तरङ्गों के समान सामर्थ्य-वाले तेरे दिव्य आयुधों (अस्त्रों) की जय है अतः तेरी उपासना तद्रूपता को प्राप्त गुरु की आराधना से यदि उपासक तेरा ही भजन करे तो तब उसे मुक्ति प्राप्त होती है अन्यथा मोक्ष प्राप्ति नहीं होती है।

टिप्पणी :—

दिव्यायुधानांजयः। भगवती श्री महात्रिपुरसुन्दरी के चार हाथों में पाश, अँकुश, धनुष और वाण ये चार आयुध हैं। अर्थात् ऊपर के वाम में धनुष, दक्षिण में वाण, नीचे के वाम हस्त में पाश और दक्षिण कर में अंकुश है। पाश-राग, अनुरक्ति, अंकुश—क्रोध द्वेषाख्याचित्तवृत्तिः धनुष—इक्षुधनुष, मन, वाण—पुष्पवाण, पञ्चतन्मात्रा अतएव तन्त्रराज के वासना पटल में लिखा है :—

मनो भवेदिक्षुधनुः पाशो राग उदीरितः
द्वेषः स्यादंङ्कुशः पञ्चतन्मात्रा पुष्पसायकाः

उत्तर चतुः शती शास्त्र में इन आयुधों का स्वरूप अन्य प्रकार से दर्शाया है—तथाहि—

इच्छाशक्ति मयं पाशं मङ्गलज्ञान रूपिणम्
क्रियाशक्ति मये वाणधनुषीदधदुज्ज्वलम्

अर्थात् भगवती का पाश इच्छा शक्ति, अंकुश-ज्ञान शक्ति, और धनुष तथा वाण ये क्रिया शक्ति रूप हैं।

वामकेश्वर तन्त्र में-शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध भगवती के पांचवाण बताये गये हैं और मन को धनुष बतलाया गया है, तथाहि-"शब्द स्पर्शादयो वाणा मनस्तस्याऽभवद्धनु" रिति, । कादिमत में वाणों के विषय में लिखा है कि भगवती के वाण स्थूल सूक्ष्म और पर के भेद से तीन प्रकार के हैं, स्थूल वाण फूलों के हैं, सूक्ष्म मन्त्रमय हैं और पर वासनामय हैं। स्थूलों के विषय में लिखते हैं :-"स्थूलान् श्रुणुप्रिये ! कमलं कैरवंरक्तं कल्हारेन्दीवरे तथा। सहकारक मित्युक्तं पुष्पपञ्चक मीश्वरीति। कालिका पुराण में पञ्चवाणों के नाम निम्नलिखित हैं :—

हर्षणं रोचनाख्यञ्च मोहनं शोषणं तथा
मारणं चेत्यमीवाणा मुनीनामपि मोहदाः इति

अर्थात् इनके काम इनके नाम के अनुसार हैं, हर्षण, रोचन मोहन शोषण तथा मारण। ज्ञानार्णव में इनके नाम क्षोभणं द्रावणं देवी तथाऽऽकर्षण संज्ञकम्। वश्योन्मादौ क्रमेणैव नामानि परमेश्वरीति। अर्थात्—क्षोभण द्रावण, आकर्षण, वशीकरण और उन्मत्तीकरण हैं। तन्त्रराज में इनके नाम मदन, उन्मादन, मोहन, दीपन और शोषण हैं। तथाहि— "मदनोन्मादनौ पश्चात्तथा मोहन दीपनौ। शोषणश्चेति कथितः वाणापञ्च पुरोदिताः। अतएव टीकाकारने जयःप्रतापो मोहन वश्य, मारण, स्तम्भनादीनि, लिखा है जिसको हमने व्याख्या में दर्शाया है।

जब भगवान् दुर्वासा मुनि संसार सागर में बार-बार गोते लगाने से दु:खित किञ्चित ज्ञानवान् मादृश मानवों के ऊपर दया कर श्री महात्रिपुरसुन्दरी से सविनय प्रार्थना करते हैं।

नाना योनि सहस्र सम्भव वशाज्जाता जनन्यः कति
प्रख्याता जनकाः कियन्त इति मे सेत्स्यन्ति चाग्रे कति।
एतेषां गणनैव नास्ति महतः संसार सिन्धोर्विधे-
र्भीतं मां नितरामनन्य शरणं रक्षानुकम्पानिधे ।।२५।।

हे अनुकम्पानिधे हे दयानिधे [दया की सागर] हे महात्रिपुरसुन्दरी नाना प्रकार की योनियों में हजारों बार जन्म लेने से अर्थात् चौरासी लाख-योनियो में अनेक बार पैदा होने से यह पता नहीं कि कितनी माताओं के गर्भ में जन्म लिया तथा कितने पिता बने और भविष्य में भी कितनी मातायें होंगी और कितने पिता होंगे। इनकी गणना (गिनती) नहीं हो सकती—

इति—इस प्रकार वड़े अपार और अगाध जो संसार सागर उसके विधान से (बार २ संसार सागर में गोते लगाने से और पुनः पुनः बाहर आने से अर्थात् जन्म और मरण से, नितरांभीतं-अत्यन्त भयभीत, अनन्य शरणं-जिसको कोई दूसरा शरण देने वाला नहीं है।

ऐसे मां–मुझको, रक्ष-रक्षा-कर अर्थात् हे जननि तू मेरी रक्षा कर। रक्ष-लोट्–लकार में मध्यम पुरुष के एक वचन का रूप है, अतः रक्ष क्रिया के साथ त्वं [तू] कर्ता आता है।

भावार्थ :—

संसार में बार-बार के आवागमन से भयभीत होकर दुर्वासा मुनि दयावती माता से [श्री महात्रिपुरसुन्दरी से] प्रार्थना करते हैं कि तेरे अतिरिक्त मुझे कहीं शरण नहीं मिल सकती है अतः इस संसार सागर में डूबने से मुझे उबार कर अपनी शरण में ले अर्थात मुक्ति प्रदान कर।

टिप्पणी :—नाना योनियों में–चौरासी लाख यौनियों में नौ लाख जलचर जल में रहने वाले जीव, मत्स्य कच्छप, सत्ताईस लाख स्थावर, वृक्ष पर्वत आदि, ग्यारह लाख कृमि-सर्प इत्यादि । दश लाख पक्षी, काक, तोता, मैना आदि । तेईस लाख चतुष्पद (चौपाये) गाय, बैल हाथी, घोड़ी और चार लाख मनुष्य इन सबका योग ८४००००० चौरासी लक्ष होता है।

: २६ :

सांसारिक दुःखों से छुटकारा पाने के लिए प्राक्तन महर्षियों ने अनेक प्रकार के व्रत और यज्ञों का अनुष्ठान दर्शाया है उन्हीं को क्यों नहीं करते ? मेरी आराधना में ही तुम्हें क्या विशेषता दृष्टिगोचर होती है ? भगवती के इस आक्षेप के उत्तर में मुनिसादर प्रार्थना करते हैं :—

देहक्षोभकरैर्व्रतैर्बहुविधैर्दानैश्च होमैर्जपैः
संतानैर्हयमेध मुख्य सुमुखैर्नानाविधैः कर्मभिः ।
यत्संकल्प विकल्प भावमलिनं ख्यातं पदं तस्यते
दूरादेव विवर्तते परतरं मातः पदं निर्मलम् ॥२६॥

व्याख्या :—

हे मातः ! हे महात्रिपुरसुन्दरि जननि देहक्षोभकरैः— शरीर को सुखाने वाले अनेक प्रकार के व्रतों से [निराहार एकादशी, प्रदोष आदि व्रत रखने से मनुष्य का शरीर दुर्बल होता जाता है] तथा नाना विध तुला पुरुष आदि दानों से, अन्य देवताओं के मन्त्रानुकूलन से, निरन्तर कच्चे और पक्के अन्न के वितरण से [सदावर्त लगाने से]हयमेध-अश्वमेध यज्ञ जिनमें मुख्य हैं ऐसे बहुत प्रकार के यज्ञ यागादिकों के सम्पादन से तथा और भी अनेक सत्कर्मों के करने से यत्- जो, संकल्प विकल्प भाव मलिनं—संकल्प (किसी कार्य के करने में मनका दृढ़ निश्चय) विकल्प (करूं अथवा न करूं) का भाव-संशय उससे मलिन सुख और दुःख के फल का

देने वाला अर्थात् करने से सुख और न करने से दुःख देने वाला, ख्यातं–विख्यात (प्रसिद्ध) पदं–प्राप्त होने योग्य स्थान है, वह तस्य—उपर्युक्त व्रतादिकर्म करने वाले के अर्थात् उस पुरुष के लिये, ते—तेरा (भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का) निर्मलं मलसे रहित जिसमें कोई धब्बा नहीं अर्थात् निष्कलंक शुद्ध, अतएव परतरं—परमउत्कृष्ट अर्थात् दान-पुण्य यज्ञ यागादि जन्य फ़ल से प्राप्त होने वाले पद से उच्चतर पदं स्थान, दूरादेव–दूर से ही विवर्तते–निवर्तते लौट जाता है।

अर्थात् व्रत, दान, जप, होम, यज्ञ आदि करने से जो पद प्राप्त होता है उस पद से उत्कृष्ट और निष्कलंक भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का पद है।

संक्षेप में उपर्युक्त पद्य का अर्थ निम्नलिखित प्रकार से होगाः—हे मातः हे जननि ! देह को अत्यन्त कष्ट पहुंचाने वाले बहुत प्रकार के निराहारादि व्रत, दान होम जप अन्नसत्र (सदावर्त) अश्वमेध आदि यज्ञों और पुण्य कर्मों से प्राप्य (प्राप्त होने के योग्य) संकल्प और विकल्पों से मलिन सुप्रसिद्ध (विख्यात) पद को उपर्युक्त कर्मों का कर्त्ता जो प्राप्त होता है अथवा प्राप्त करता है उससे (उक्तपद को प्राप्त होने वाले से) तेरा यह अत्यन्त निर्मल उत्कृष्ट तर पद दूर रहता है।

टिप्पणी .—

यत्राऽस्ति भोगो नहि तत्र मोक्षो
यत्राऽस्ति मोक्षो नहि तत्र भोगः ।
श्रीसुन्दरीसाधनतत्पराणां
भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव ॥

अर्थात् किसी देवता की उपासना में ऐश्वर्य की प्राप्ति है तो मोक्ष नहीं है और किसी देव की उपासना में मोक्ष प्राप्ति है तो वहाँ भोगों की प्राप्ति नहीं है किन्तु भगवती श्री महात्रिपुर सुन्दरी की उपासना से भोग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति होती है ।

अब सकल मातृका प्रपञ्च मूलभूत (सम्पूर्णवर्ण माला के मूल कारण) अकार और हकार रूप (अहं रूप) पराशक्ति की स्तुति करते हैं:—

पञ्चाशन्निज देहजाक्षर भवैर्नाना विधैर्धातुभि–
र्बह्वर्थैः पद वाक्य मानजनकै रर्थाविनाभावितैः ।
साभिप्राय वदर्थ कर्म फलदैः ख्यातै रनन्तै रिदं
विश्वं व्याप्य चिदात्मनाहमह मित्युज्जृम्भसे मातृके ।।

हे मातृके मातृकाक्षर रूपिणी, अर्थात् मातृकाक्षरों की मूलभूत हे माता ! पञ्चाशन्निज देहजाक्षर भवैः—निजदेह अपना शरीर भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का परा शरीर-उस-से उत्पन्न होने वाले पञ्चाशद् (पचास) अक्षरों से (यहाँ पर पंचाशद् से एक पञ्चाशद् ५१ का—बोध होता है) उत्पन्न (पैदा हुये) वह्वर्थैः—बहुत अर्थों वाली (धातूनां अनेकार्थत्वात्) नानाविधैः धातुभिः—अनेक प्रकार की धातुओं से (भूसत्तायाम् आदि धातुओं से जिनसे क्रियापद बनते हैं) अर्थाविना भावितैः—सार्थक (अर्थवाले) पद वाक्य मानजनकैः—पद सार्थक अक्षरों से बने हुये संज्ञा और क्रिया, (सुप्तिङन्तं पदम्) वाक्य पदों का समूह, मान छन्द, यहाँ पर मान का अर्थ मात्रा और गणों के परिमाण (गिनती) से है यतः छन्द में या तो मात्रायें होती हैं और मगण सगण आदि गण होते हैं, अतः छन्द का अर्थ यहाँ पर उस—वाक्य समूह से है

जिससे पद्य अथवा श्लोक बनता है, जनकैः बनाने वाले अक्षरों से पद, पदों से वाक्य, वाक्यों से छन्दोबद्ध पद्य अथवा गद्य बनता है, ऐसे अनन्त और अगणित, साभिप्रायवदर्थ कर्मफलदैः—वक्ता के अभिप्राय के साथ उच्चरित्त अर्थ घट पटादिकों के कर्म के फल को देने वाले, अर्थात् साभिप्राय अर्थ के निर्देशक, यह पद पदवाक्य मानजनकैः इस पद का विशेषण है, इदं विश्वं व्याप्य इस विद्यमान विश्व को [त्रैलोक्य स्वर्ग मृत्यु पाताल को]व्याप्त कर अर्थात् त्रिलोकी में व्याप्त होकर, चिदात्मना—चैतन्य रूप से, अहं—केवल मैं ही हूँ, इति—इस प्रकार से, उज्जृम्भसे—घोषणा करती है, उज्जृम्भसे—क्रिया का, कर्ता 'त्वं' [तू] है।

संक्षेप में इस पद्य का अर्थ निम्न प्रकार से होगा :—

हे मातृके मातृकाक्षर स्वरूपिणि ! माता अपने शरीर से उत्पन्न पचास [५०] अक्षरों से पैदा हुये अनेक अर्थों वाली नाना प्रकार की धातुकों से सार्थक तथा अभिप्राय के साथ उच्चरित [उच्चारण किये गये] घटपटादि अर्थों के निर्देशक विख्यात [प्रसिद्ध] और अनन्त [अगणित] पद वाक्य और पद्य गद्यादि से [इनसे विनिर्मित अगणित ग्रन्थों से] इस विश्व में व्याप्त होकर चिदात्मना चैतन्यरूप से अहं केवल मैं ही हूं ['अ' से लेकर 'ह'] अक्षर पर्यन्त अ- आ ..श ष स ह] मातृका रूप से केवल मैं ही हूँ इस बात की घोषणा करती है ।

सारांश—

साङ्ग वेद, पुराण, स्मृति, षट्शास्त्र, काव्य, नाटक और आख्यायिका आदि सब मातृकाऽक्षरों से ही उत्पन्न हुये हैं [बने हैं] अतः उसकी [अ-हं की] घोषणा सर्वथा समुचित है।

टिप्पणी—

पञ्चाशन्निजदेहजाक्षरभवैः—अर्थात्—भगवती के पराशरीर से उत्पन्न अक्षर पराशरीर का अर्थ कारण विन्दु है जैसे कि लिखा है—"वि चिकीर्षुक्षैनी भूता साचिदभ्येति विन्दुताम्" इति, प्रपञ्चसार। कारण विन्दु से कार्य विन्दु उससे नाद, उससे बीज, इन तीनों की उत्पत्ति होती है। इनकी संज्ञा पर, स्थूल और सूक्ष्म भी है। इन कारण विन्दु, कार्य विन्दु, नाद और बीज का अधिदैवत रूप अव्यक्त, ईश्वर हिरण्यगर्भ और विराट् शान्ता, वामा ज्येष्ठा और रौद्री, तथा अम्बिका, इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति रूप है। अधिभूतरूप-कामरूप, पूर्ण गिरि जालन्धर और उड्यान पीठ हैं। अध्यात्मरूप-कारण विन्दुशक्ति, पिण्ड कुण्डली आदि नामों से कहा जाता है अर्थात् शक्ति पिण्ड कुण्डली आदि नामों से कहा जाता है अर्थात् शक्ति पिण्ड कुण्डली आदि कारण विन्दु के ही नाम हैं तथा इनका आधार मूलाधार है अतएव कहा है :—

शक्तिः कुण्डलिनीतिविश्वजननव्यापारवद्धोद्यमां
ज्ञात्वेत्थं न पुनर्भवन्ति जननी गर्भेऽर्भकत्वंनराः इति

अर्थात् इसको जानने वाले का पुनर्जन्म नहीं होता है। यह कारण विन्दु जप कार्य विन्दु नाद और बीज के लिये उन्मुख होता है तब अव्यक्त शब्द ब्रह्म ख उत्पन्न होता है, यह ख कारण विन्दु का आत्मा होने से वायु के प्रयत्न से सबसे पहिले मूलाधार में ही प्रकट होता है लिखा ही है :—

देहेऽपि मूलाधारेस्मिन् समुदेति समीरणः
विवक्षो रिच्छयोत्थेन प्रयत्नेन सुसंस्कृतः ।।
सव्यञ्जयति तत्रै व शब्द ब्रह्मापि सर्वगमिति ।।

अतः यह कारण विन्द्वात्मक अभिव्यक्त शब्द ब्रह्म अपनी ही प्रतिष्ठा से निष्पन्द हुआ इसी को परावाणी कहते हैं, यही परावाक् नाभि में पहुंच कर पश्यन्ती वाक् बन जाती हैं हृदय में पहुंचकर मध्यमा बनती है पुनः यही वदन पर्यन्त जब वायु से प्रेरित होकर पहुंचती है अर्थात् मुख मण्डल में पहुंचती है. तो वायु से कण्ठादि स्थानों में व्यञ्जमान अकार आदि अक्षर स्वरूप बनकर श्रोत्रेन्द्रिय सें ग्रहण योग्य (कानों सुनने योग्य) वैखरी वाग् (वाणी) बन जाती है—अतएव गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी रामायण में इस ओर संकेत किया है :—

"हिय सुमरी शारदा सुहाई, मानसतें मुख पङ्कज आई ।
"विमल विवेक धरम नय शाली, भरत भारती मंजु मराली ।।

अयोध्याकाण्ड सभा में भरतजी की उक्ति के विषय में—

अर्थात् भरतजी ने अपने हृदय में सरस्वती का स्मरण, (ध्यान) किया तो हृदय से मुख में (कण्ठ में) आगई अर्थात् मध्यमासे वैखरी बन गई ।

मूलाधारात् प्रथम मुदितो यश्चभावःपराख्यः ।
पश्चात् पश्यन्नथ हृदयगो बुद्धियुङ् मध्यमाख्यः ।
व्यक्ते बैखर्यथ रुरुदिषोस्य जन्तोः सुषुम्णा ।।
वद्ध एतस्माद्भवति पवने प्रेरितावर्ण संज्ञा ।।इति।।

इस प्रकार मनुष्य मातृका के चार भेदों में से परा, पश्यन्ती और मध्यमा न जानकर चौथे भेद वैखरी को ही मानते हैं किन्तु मातृकाक्षरों की मूल कारण पराशक्ति ही है।

अतएवश्री ललिता सहस्रनाम में श्री ललिता महात्रिपुर सुन्दरी के—

पराप्रत्यक् चिती रूपा पश्यन्ती परदेवता।
मध्यमावैखरी रूपा भक्तमानसहंसिका ॥

परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी रूपा नाम लिखे हैं - तथाच—

'चिदात्मनाऽहममहमित्युज्जृम्भसे मातृके—

चिदात्मना चैतन्य रूपेण चिच्छक्ति रूपेण-सब उसके (महाशक्ति) नाम के पर्याय हैं, अतएव—

॥ चिच्छक्तिः सर्वा भूतेषु रूपतस्यास्तदेवहि ॥

इस प्रकार देवी भागवत में लिखा है तथा-

॥ चित् शक्तिः परमेश्वरस्य विमला चैतन्य मेवोच्यते ॥

"चैतन्यस्वरूपा शक्तिः यह गौडपादाचार्य का सूत्र है।

सारांश यह है कि चित्, चैतन्य, चेतनारूपा, चिदात्मा चैतन्य स्वरूपा ये सब नाम महात्रिपुरसुन्दरी के ही हैं अतएव चिच्छक्ति श्चेतना रूपा" ये दो नाम भगवती के श्री ललितासहस्र नाम में आये हैं।

हे मातृ के मातृकाक्षराणां मूलभूते,

अतएव नित्या षोडशिकार्णव में लिखा है:—

यदक्षर महासूत्र प्रोतमेतज्जगत्रयम्

ब्रह्माण्डादि कटाहान्तं तां वन्दे सिद्ध मातृकाम्

यस्या मातृकाया अक्षरैरेक पंचाशत् संख्यैर्महासूत्रै ब्रह्माण्डादि कटाह पर्यन्तं स्थूलतमादि सूक्ष्मतमोन्तं प्रोतंस्यूतम्। अर्थात् जिस मातृका के ५१ इक्यावन अक्षर रूप महासूत्रों से ब्रह्माण्ड से लेकर कटाह पर्यन्त (सबसे बड़े से सबसे छोटे तक) जगत (त्रिलोकी) स्यूत (बंधा-सिला हुआ। है।

काम कला विलासे—

स्फुटशिवशक्ति समागमबीजांकुररूपिणी पराशक्तिः ॥
अणुतररूपा नुत्तरविमर्शलिपि लक्ष्यविग्रहा भाति ॥३॥

अणुतरेति—

अणुतरं अत्यन्त सूक्ष्मरूपं अस्या-इति

अनुत्तरलिपिः अकारः विमर्शलिपिः हकारः ताभ्यां लक्ष्यं विग्रहं स्वरूपं यस्याः तथोक्ता। अत्र अनुत्तर विमर्श लिपि लक्ष्यविग्रहा इत्यनेन अहमात्मि कान्तर्गर्भितसमस्तवर्णकदम्बका पराशक्ति अकारादि हकारान्तं पञ्चाशदक्षररूपिणी वर्णपदमंत्रकलातत्वभुवनात्मकसमस्त प्रपञ्च-जनयित्री पराभट्टारिका समस्त भूतान्तरात्मा सर्वत्र।

"अहमहम्" इत्येवमकारेण प्रतीयमानादृश्यते इत्युक्तं भवति।

अर्थात् अनुत्तर लिपि अकार विमर्श लिपि हकार इन दोनों अक्षरों से 'अहं' से जिनके स्वरूप का लक्ष्य किया गया है ऐसी जगदम्बिका महात्रिपुरसुन्दरी अ से लेकर हकार पर्यन्त पचास अक्षरों के स्वरूप वाली वर्ण पद मन्त्रकलातत्व और भुवनात्मक समस्त प्रपञ्च की पैदा करने वाली सम्पूर्ण प्राणि वर्ग की अन्तरात्मा सर्वत्र 'अहं अहं' इस प्रकार से प्रतीत हो रही दिखलाई देती है।

: २८ :

अब महामुनि दुर्वासा आवरण सहित श्रीचक्र की (श्रीयन्त्र) वर्णना करते हैं :–

श्रीचक्रं श्रुतिमूलकोश इति ते संसारचक्रात्मकं
विख्यातं तदधिष्ठिताक्षरशिवज्योतिर्मयं सर्वतः ।
एतन्मन्त्रमयात्मिकाभिररुणं श्रीसुन्दरीभिर्वृतं
मध्ये वैन्दवसिंह पीठललिते त्वंब्रह्मविद्या शिवे ।।२८ ।।

व्याख्या—

हे शिवे हे कल्याण रूपे (मण्डलस्वरूपे) 'ते' तेरा 'संसार चक्रात्मकं'–संसारचक्र स्वरूप संसार चक्र से काल चक्र और देश चक्र से समानता तन्त्रराज के २८वें पटल में की गई है। ज्ञानार्णव तन्त्र कहता है कि मूल विद्या (मूलमन्त्र) के जिन अक्षरों से श्री यन्त्र का प्रस्तार हुआ है उन्हीं अक्षरों से संसार चक्र का भी विस्तार हुआ है। 'तदधिष्ठताक्षरशिवज्योतिर्मयं' श्री चक्र में अधिष्ठित [विद्यमान-स्थित] जो अक्षर हैं वे ही श्री चक्र के आवरण देवताओं के भूतवर्ण स्वरूप शक्तियां हैं तथाहि :—

श्री यन्त्रान्तर्गत भूपुरस्थ अणिमादि अष्टसिद्धियां षोडश-दलस्थित कामाकर्षिणी आदि, अष्टदल स्थित अनङ्गकुसुमादि, चतुर्दशारस्थ सर्व संक्षोभिणी आदि वहिर्दशारस्थित सर्वसिद्धि-प्रदा आदि अन्तर्दशारस्थ सर्वज्ञाप्रदा आदि, अष्टारस्थित

वशिनी आदि अष्ट वाग देवता, त्रिकोणस्थ महाकामेश्वर्यादि देवियों से जो ज्योतिर्मय बना हुआ है, 'सर्वत':–श्री चक्र के चारों ओर, 'एतन्मन्त्र मयात्मिकाभि' :–श्री विद्या के मन्त्राक्षर स्वरूप श्री सुन्दरी भी शोभा में जो अत्यन्त सुन्दरी है उनसे (परिवार देवताओं से) 'व्रतं'–परिवृत (वेष्टित घिरा हुआ) 'अरुणं'–वालसूर्य के समान कान्तिमान् 'ते'–तेरा 'श्री चक्रं'–पूजा यन्त्र अर्थात् श्री महात्रिपुरसुन्दरी का पूजा यन्त्र श्रुतिमूल कोशं–"ओङ्कार प्रभव: वेदा:" (ओङ्कार से वेद उत्पन्न हुये हैं) वेदों का मूलकारण जो ओंकार उसका कोश स्वरूप है, अर्थात् श्रीचक्र के मध्य में जो त्रिकोण है वह कामकलाक्षर के तीन विन्दुओं से (रक्त शुक्ल और मिश्र विन्दुओं से) तथा कामकलाक्षरगत जो तीन विन्दु हैं वे ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र स्वरूप हैं, "ब्रह्म विन्दुर्महेशानि कामाशक्ति रुदीरिता" इस ज्ञानार्णव के वचन से ब्रह्मविन्दु वामा शक्ति स्वरूप हैं, विश्वं वमतीति वामा" इस व्युत्पत्ति से वामा शक्ति शब्द सृष्टि और अर्थ सृष्टि की कारण है अत: श्रीचक्र को श्रुतिमूल का (ओंकार का) कोश कहा गया है 'इति'–इस तरह (इस कारण से) कि श्रीचक्र श्रुतिमूल कोश है, 'विख्यातं'–प्रसिद्ध है, तथा 'वैन्दवसिंह पीठ ललिते'–वैन्दव विन्दुचक्र में जो सिंहपीठ सिंहासन [पीठ-आसन] उससे 'ललित'–निरूपम शोभायुक्त 'मध्ये'–मध्य त्रिकोण के मध्य विन्दु चक्र में 'त्वं–तू [महात्रिपुरसुन्दरी] 'ब्रह्मविद्या'–परब्रह्म–स्वरूपिणी विराजती है।

'श्री सुन्दरीभिर्वृतं' भगवती श्री महात्रिपुरसुन्दरी का सिंहासन पञ्चमहा प्रेतों (शवों) से सन्नद्ध है और भगवती

सिंहासन पर महाकामेश्वर के अङ्क में विराजमान हैं और सिंहासन के चारों ओर सुन्दरियां परिवार देवियां स्थित हैं, यह समझना चाहिये।

'एतन्मन्त्रमयात्मिकाभिः'–श्री विद्या के मन्त्राक्षरों से प्रसृत (प्रसार को प्राप्त) अर्थात् लकार से चतुरस्र (भूपुर) सकार से षोडशदल, ठकार से अष्टदल ईकार से चतुर्दशार एकार से वहिर्दशार, रकार से अन्तर्दशार, ककार से अष्टकोण, अर्धेन्दु से (नाद से) त्रिकोण, बिन्दु से बिन्दु चक्र इस प्रकार मूलविद्या के नवाक्षरों से आवरण देवताओं के सहित श्रीचक्र का प्रसार हुआ, चक्रों की अणिमा सिद्धि आदि देवियां पहले लिख दी गई हैं।

संक्षिप्तार्थ :—

संक्षेप में इस पद्य का अर्थ निम्नलिखित प्रकार से होगा —

हे शिवे ! हेकल्याण रूपे ! संसार चक्र स्वरूप श्रीचक्र में स्थित बीजाक्षर रूप शक्तियों से ज्योतिर्मय (प्रकाशमान) मूल विद्या के नव बीज मन्त्रों से प्रसृत शोभा शालिनी आवरण शक्तियों से (आवरण देवताओं से) परिवेष्टित [चारों ओर से घिरा हुआ] तुम्हारा श्रीचक्र वेदों के मूल कारण ओङ्कार का कोष है अर्थात् श्रीचक्र के मध्यत्रिकोण में स्थित विन्दु चक्र के ऊपर सुशोभित पञ्च महाशव [पञ्चमहाप्रेत] सन्नद्ध सिंहासन पर महाकामेश्वराङ्क में तू ब्रह्मात्मिकास्थित है।

टिप्पणी :— जिन अक्षरों से श्री चक्र का प्रसार हुआ है उन्हीं अक्षरों से संसार चक्र का भी विस्तार हुआ है।

इस विषय में ज्ञानार्णव की उक्ति निम्नलिखित है :—

लकारात् पृथिवी जाता सशैल वनकानना।
पञ्चाशत्पीठसम्पन्ना सर्वतीर्थमयीपरा ।।
सर्व गङ्गा मयी सर्व क्षेत्र स्थानमयी शिवे।
सकाराच्चन्द्र तारादिग्रहराशि स्वरूपिणी।
हकारात् शिव संबाध व्योममण्डल संस्थिता ।।
ईकाराद्विश्व कर्त्रीयं मायातुर्यात्मिकाप्रिये ।
सकाराद्वैष्णवी शक्ति: विश्वपालन तत्परा ।।
रकारात्तेजसा युक्ता परं ज्योति: स्वरूपिणी।
ककारात्कामदा कामरूपिणीस्फुरदव्यया ।।
अर्धचन्द्रेण देवेशि विश्वयोनि रितीरिता।
विन्दुना शिव रूपेण शून्य रूपेण साक्षिणी ।।इति।।

अर्थात् लकार से पर्वत जङ्गल पीठ, तीर्थ और गङ्गा आदि सब नदियाँ तथा पुण्य क्षेत्र उत्पन्न हुये हैं। सकार से चन्द्र, तारामण्डल और १२ राशियाँ तथा ग्रहगण पैदा हुआ।

ह कार से शिवयुक्त आकाश मण्डल में स्थित है। ईकार से विश्व को रखने वाली तुरीया स्वरूप माया है। सकार से विश्व का पालन करने वाली वैष्णवी शक्ति स्वरूपा है। र कार से तेजोयुक्त परं ज्योति रूपिणी है। ककार से काम रूपिणी कामप्रद अव्यय रूपा है। ‿अर्ध चंद्र[नाद]से विश्व की योनि है (विश्वोत्पत्ति कारक) O विन्दु से शिव रूप में शून्य की साक्षिणी [साक्षी] है।

ऊपर लिखा गया है कि लकार से श्रीचक्र भूपुर, सकार से षोडशदल, हकार से अष्टदल आदि उत्पन्न हुए हैं इस कथन में ज्ञानार्णव का प्रमाण उद्धृत करता है कि मूल विद्या बीजाक्षरों से श्रीचक्र बना है तथाहि :—

'ल' लकारः पृथिवीबीजं तेजो भूर्विम्वमुच्यते ।
'स' सकारश्चन्द्रमाभद्रे कलाषोडशकात्मकः ।।
तस्मात् षोडश पत्रं च,
'ह' हकारः शिव उच्यते, अष्टमूर्तिः सदाभद्रे ।
तस्माद्वसुदलं भवेत् ।।
'ई' ईकारस्तु सदा माया भुवनानि चतुर्दश, पालयन्ती परातस्माच्छक्र कोणं भवेत् प्रिये ।।
'ए' शक्तिरेकादश स्थाने स्थित्वा सूते जगत्त्रयम् विष्णोर्योनिरिति ख्याता साविष्णोर्दशरूपकम् एकारात् परमेशानि चक्रव्याप्य व्यवस्थिता ।
'र' दशकोणकरं तस्मात्प्रकारो ज्योतिरव्ययः ।
कला दशान्वितो वह्निर्दशकोण प्रवर्तकः ।
'क' ककारान्मदनोदेवि शिवं चाष्ट स्वरूपकम् ।
योनिवश्यं तदाचक्रं वसुयोन्यङ्कितं भवेत् ।।
'◡' अर्द्धमात्रागुणान् सूते नादरूपा यतस्मृतः त्रिकोण रूपा योनिस्तु ।
'O' विन्दुना वैन्दवं भवेत् ।
कामेश्वर स्वरूपं तद्विश्वाधार स्वरूपकम् श्री चक्रन्तु वरारोहे ।

श्री विद्या वीर्य सम्भव मिति ।।

अर्थात् (लं) इस पृथिवी बीज से श्री यन्त्र का भूपुर बना है जिसकी तीन रेखायें हैं। सकार चन्द्र बीज है इसमें षोडश दल बना है हकार का अर्थ शिव है, शिव अष्ट मूर्ति है इससे अष्ट दल बना, ईकार तूरीया रूपा माया है इससे चतुर्दशार बना। एकार शक्ति रूप है इससे दशावतार विष्णु का (वैष्णवीशक्ति से) जगत् की उत्पत्ति और पालन होता है इससे वहिर्दशार बना। रं-वह्निबीज है इसकी दश कला स्वरूप श्री चक्र का अन्तर्दशार बना।

क—ककार से अष्टमूर्ति स्वरूप सशिव (वसुकोण) बना।

‿—अर्ध मात्रा से अर्थात् नाद से गुणत्रय प्रधान त्रिशक्ति रूप त्रिकोण बना।

O—नाद के ऊपर का विन्दु त्रिशक्ति रूप त्रिकोण के भीतर का वैन्दव चक्र है जो कामेश्वर स्वरूप है, और विश्व का आधार है, अर्थात् विन्दु चक्र के ऊपर पञ्चमहाप्रेत सनद्धसिंहासन है और उसमें महाकामेश्वर शिव के अंक में श्री महाकामेश्वरी (श्री महात्रिपुरसुन्दरी) विराजमान है। इस प्रकार श्री चक्र मूल विद्या के नवाक्षरों से उत्पन्न हुआ है।

अतः संसार चक्र की और मूल विद्यात्मक श्रीचक्र की एकात्मता है। भावनोपनिषद् में श्री चक्र की और मनुष्य शरीर की (पिण्डकी) एकता दिखायी गयी है।

स्थाली पुलाकन्याय से हम केवल पाठकों को उसका नमूना दिखलाते हैं:—

श्री गुरुः सर्वं कारण भूताः शक्तिः ॥१॥

अर्थात् गुरु ही सर्व कारण स्वरूप विमर्शमयी शक्ति है।

तेन नव रन्ध्र रूपो देहः ॥२॥

गुरु के दिव्य, सिद्ध और मानव भेद से तीन भेद मुख्य हैं। पुनः एक एक भेद के तीन तीन भेद होने से प्रकाशानन्द नाथ से लेकर सुभगानन्दनाथ पर्यन्त नौ भेद हो गये, तेन उस विमर्श शक्ति का स्वरूप (देह) नवरन्ध्रमय (नवछिद्रमय) है कान, आँख और नाक इनके दो दो रन्ध्र (छिद्र) छः हुये जिह्वा, गुह्य और पायु इन तीनों को मिलाने से नौ हुये। अतः शरीर के नौ रन्ध्रों से गुरु का स्वरूप नवनाथमय हुआ। दो श्रोत्र (कर्ण) और वाणी, दिव्यौघ। चक्षुद्वय और उपस्थेन्द्रिय, सिद्धौघ शेष मानवौघ।

नवचक्ररूपं श्री चक्रम् ॥३॥

अर्थात् स्वकीय देह ही त्रैलोक्य मोहन आदि नवचक्रों के समष्टि रूप श्री चक्र से अभिन्न है। अर्थात् स्वदेह ही श्रीचक्र है।

वाराही पितृ रूपा कुरु कुल्ला वलि देवता माता ॥४॥

पुरुषार्थाः सागराः ॥५॥

अपने शरीर में ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय और बुद्धि आदियों में माता पिता के विशेष अँश जो संक्रांत होते हैं–अस्थि आदि और मांस आदि स्वरूप उनमें वाराही और कुरुकुल्ला की भावना करनी चाहिये। वाराही यद्यपि स्त्री है तथापि

उसके मुख में पुरुषत्व के होने से (पुंरुपत्व) पितृ रूप की उपपत्ति होती है।

पश्चिम आदि दिशाओं से उत्तर दिशापर्यंन्त विद्यमान इक्षु–इरा (मद्य) घृत और क्षीर सागर ये चार सागर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार पुरुषार्थ स्वरूप हैं। तन्त्रराज में, भी लिखा है :—

वलिदेव्यः स्वमायाः स्युः पञ्चमी जनकात्मिका।
कुरूकुल्ला भवेन्माता पुरुषार्थास्तु सागराः। इति।

देहो नवरत्नद्वीपः ॥६॥

त्वगादिसप्तधातुरोम संयुक्तः ॥७॥

संकल्पाः कल्पतरवस्तेजः कल्पकोद्यानम् ॥८॥

अर्थात् त्वक् और रुधिर से लेकर अस्थिपर्यंन्त सात, और लोभ इस प्रकार नवरत्नात्मक नव खण्ड हैं। रस, मांस, रोम, त्वक् रुधिर, शुक्र मज्जा, अस्थि और भेद ये क्रमशः पुष्प, राग, इन्द्रनील, वैडूर्य, विद्रुम, मौक्तिक, मरकत, वज्र, गोमेध पद्मरागात्मक नवरत्नमय खण्ड रूप हैं। तथा पश्चिम दिशा से निर्ऋत्ति दिशा पर्यन्त भावना करनी चाहिये। मानस संकल्प विशेष ही हरिचन्दन वाटिका, मन्दार वाटिका, पारिजात वाटिका और कदम्ब वाटिकादि कल्पवृक्ष हैं। क्योंकि संकल्प के साथ ही कर्म में प्रवृत्ति होने से अभिमत फ़ल प्राप्ति होती है। संकल्प के साथ कर्मों का आधारभूत तेजमन ही कल्पकोद्यान (कल्पवृक्षवाटिका) हैं, "मनोज्योतिः। इस वेद

वाक्य के अनुसार संकल्प विकल्पात्मक मन ही तेजः पद से यहाँ पर कहा गया है।

रसनयाभाव्यभाना मधुर लवण तिक्त कटुकसायरसाः षड्तवः ॥९॥ अर्थात् रसनेन्द्रियां मधुरादि षट् रसों का अनुभव ही वसन्त आदि षट् ऋतुओं की भावना है। इत्यादि।

शेष पाठक स्वयमेव भावनोपनिषद् देखने की कृपा करें।

अब (श्रीचक्र वर्णन के उपरान्त) पूर्णाभिषिक्त साधक श्रीचक्र की सावरण पूजा करने के अनन्तर पराविद्या का उद्धार करते हैं :—

(नोट) उपासक प्रवर त्रिपुरामहिमस्तोत्र के टीकाकार श्री नित्यानन्दनाथ लिखते हैं कि यह पद्य किसी ने पीछे से बनाकर इस स्तोत्र में प्रक्षिप्त कर दिया है, यतः महामुनि दुर्वासा ने विद्याक्षरों का प्रभाव मात्र वर्णन किया है साफ साफ उद्धार नहीं किया है (खोलकर मन्त्र नहीं लिखा है) अतः हम भी इस स्तोत्र की हिन्दी भाषा में व्याख्या करने के लिए सुतरां असमर्थ हैं। पाठकों की जानकारी के लिए संस्कृत टीका नीचे दे देते हैं :—

: २९ :

विन्दुप्राणविसर्गजीव सहितं बिन्दुत्रिबीजात्मकं
षट्कूटानि विपर्ययेण निगदेत्तारत्रिबालावलै :।
एभिः संपुटितं प्रजप्य विरहेत्प्रासादमन्त्रं परं
गुह्याद्गुह्यतमं सयोगजनितं सद्भोगमोक्षप्रदम् ।।

संस्कृत टीका :–

बिन्दुः पञ्चदशस्वरः प्राणः हकारादिः विसर्गः किमन्यत्स्वरः जीवः सकारः सहितमेभिर्मिलितं हंसइति पदं बिन्द्वात्मकं हंसः इति त्रिबिंद्वात्मकं। बिन्द्वादिकं विसर्गादिकं ब्रिन्दुविसर्गादिकं चेति। त्रीणि कूटानि अनुक्रमेण व्युत्क्रमेणार्थे तान्येव एवं षट् कूटानि। यथा-आदौपञ्चदशस्वरः हंसः, षोऽशस्वरः सोहम् २, अं हंसः अः सोऽहं इति षड्भिरक्षरैः ३, विपर्ययेण विलोमेन तृतीयं द्वितीयं प्रथमं चेति कूटानि निगदेत् उच्चरेत्। तार त्रि–वालावलैः तारत्रयं प्रणव–मायाश्रीबीजानि वालावाग्भव कामराजशक्तिबीजानि बलबीजं स्वप्रेमात्मकम्। एभिः सप्त-बीजैः सम्पुटित–मनुलोम विलोमेंनगर्भी कृतम्। प्रजप्य यथेष्ट संख्यां समाप्य। विरहेत् सुखमनु भवेत्। प्रासादमन्त्रं हौमिति-बीजं पराप्रासाद प्रासादपराख्यम्। परं परा बीजं हकारं सयोजितमितिज्ञेयम् उत्कृष्टंगुह्याद् गुह्यतमम्। गोप्याद्गोप्य तरम्। संयोगजनितं सकार संयोजितम्। सदभोगमोक्षप्रदं

समीचीना भोगाः स्रक् चन्दन वनिता गजतुरगारोहराजमान्यतादिकाः मोक्षञ्च प्रयच्छतीति एतदुक्तं भवति—क्रमेण पूर्वोक्तानि सप्तवीजानि, ततः क्रमेणैवोक्ता नि त्रीणिकूटानि ततः ह्यौ हौंः पुनर्व्युत्क्रमेण त्रीणि कूटानि ततो व्युत्क्रमेणैवोक्त सप्तबीजानि इति महापरा प्रासादविद्या ।

अयंश्लोकः क्षेपक इतिभासते। मुनिनाति गोप्यत्वात् बिद्याक्षराणां प्रभाव एव वर्णितः। स्फुटतयोद्धारोन कृतः। मया सम्प्रदायशुद्धत्वादत्रव्याख्यातः ।

: ३० :

अब महामुनि दुर्वासा सब प्रकार के आभूषणों से विभूषित सिंहासन में विन्दुचक्रोपरि विराजमान महाराजोपचारों से समर्चित श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी की प्रार्थना करते हैं।

आताम्राऽर्कसहस्रदीप्तिपरमा सौन्दर्यसारैरलं
लोकातीत महोदयैरुपयुता सर्वोपमागोचरैः।
नानाऽनर्घ्यविभूषणै रगणितैर्जाज्वल्यमानाभितः
श्रीमातस्त्रिपुरारिसुन्दरि कुरु स्वान्ते निवासं मम ॥

व्याख्या :—

'सौन्दर्य सारैः'—सुन्दरता का मथन कर निकाले गये अत्यन्त सुन्दर, 'लोकातीत महोदयै'—लोकों से चौदह लोकों से अतीत उत्तर [सबसे बढ़िया] अर्थात् लोकोत्तर चौदह लोकों में सबसे बढ़कर अगणित जिनकी गणना नहीं हो सकती गणना रहित 'सर्वोपमागोचरैः'—सर्व उपमा अगोचर अर्थात् उपमा अलङ्कार के जितने भी भेद हैं उन सबके अगोचर अर्थात् उपमा रहित। (जिनकी उपमा नहीं हो सकती) अनुपम, गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्री सीतामाता के वर्णन में इसी बात को दूसरी प्रकार से कहा है—"सब उपमा कवि रहे जुठारी, केहि पटतरिय विदेह कुमारी" इति अर्थात् सब उपमायें पूर्व कवियों की जूठी हैं अब बताओ श्री सीताजी को किसकी उपमा दें। अनेक प्रकार के उत्तम वेश कीमती

भूषणों से सुसज्जित सजी हुई अतएव, 'अभितः–चारों ओर से, जाज्वल्य माना–(अग्नि के समान प्रदीप्त) कान्तिमती, आताम्रार्क सहस्र दीप्ति परमा' आ–चारों ओर से ताम्र–रक्तवर्ण [लाल] अर्क–वाल सूर्य प्रातःकालीन सूर्य सहस्र–हजार, दीप्ति से–कान्ति परम–सर्वोत्कृष्ट अर्थात् प्रातःकाल से रक्तवर्ण हजारों वाल सूर्यों की कान्ति से युक्त हे माता त्रिपुरारिसुन्दरी त्रिपुराऽसुर नामक दैत्य के विनाशक श्रीशिवजी की सुन्दरी अर्थात् हेमाता श्रीमाता महात्रिपुरसुन्दरी। "सुन्दरी रमणी रामा" ये विशेष स्त्रियों के नाम हैं। यदि त्रिपुरारि में से अरि शब्द निकाल दें तो त्रिपुरसुन्दरी हो जायगा। 'मे'–हमारे (महामुनि दुर्वासा के) 'स्वान्ते'–हृदय में निवासं कुरु–निवास कर [विश्राभ कर] "स्वान्तं हृन्मानसं मनः" अमरकोश में स्वान्त हृत् (हृदय) मानस और मन में पर्यायवाची शब्द हैं। यहाँ पर स्वान्ते शब्द से हृदय लिया गया है। हृदय शब्द स्वान्ते शब्द के स्थान पर ठीक नहीं बैठता था अतः स्वान्ते लिखा गया। टीकाकार ने भी स्वान्ते का अर्थ हृदय लिखा है, 'मनसि चित्ते वा' नहीं लिखा। स्वान्ते का अर्थ यहाँ पर हृदय किया जाता है। यतः हृदय परावीज कहलाता है।

"प्रभु हृदयज्ञातुः पदे पदे सुखानि भवन्ति" कल्पसूत्र प्रयोग। यह वाक्य द्व्यर्थक है। तथा हृदयबीज (पराबीज) सर्व जगत् का बीज (कारण) होने से जगद्रूप में हृदय में स्थित है।

"हृदयस्थ सर्वं जगद्वीजत्वात् तत्र जगद्रूपेण स्थिता ।"
तदुक्त मनुत्तरत्रिंशिका शास्त्रे :—

यथान्यग्रोध बीजस्यं शक्ति रूपो महाद्रुमः ।
तथा हृदय बीजस्थं जगदेतच्चराचरम् ।।इति।।

अर्थात् जैसे वटवृक्ष के बीज में शक्ति रूप महा वृक्ष अन्तर्निहित है वैसे ही यह चराचर जगत् पराबीज में (हृदय बीज में) स्थित है। सौभाग्य भास्कर व्याख्या।

संक्षिप्तार्थ :—संक्षेप में इस पद्य का अर्थ निम्न प्रकार से होगा।

हजारों बाल सूर्यों (प्रातःकाल के सूर्य) के समान कान्ति वाली सुन्दरता के सारभूत [सबसे श्रेष्ठ] लोकोत्तर उत्कर्षशाली [संसार में जिनसे बढ़कर नहीं है] गणना से रहित अनेक प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित अतएव चारों ओर से जाज्वल्यमान दीप्तिमती (अग्नि के समान प्रदीप्त) त्रिपुरासुर के संहारक भगवान शिव को मुग्ध करने वाली हे माता महात्रिपुरसुन्दरी तुम अपनी [तुम्हारी] आराधना करने वाले इस दुर्वासा ऋषि के हृदय में निवास करो।

महायोगीश्वर दुर्वासामुनि पूर्व श्लोक में महात्रिपुरसुन्दरी के भूषणों की स्तुति कर अब अनेक प्रकार के पुष्पों के आभरणों तथा नानाविधभूषणों और वस्त्रों से सुसज्जित परम सौभाग्यशालिनी भगवती के शरीर पर प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने वाले चरणों से-लेकर मुकुट पर्यन्त स्तुति करते हैं (वर्णन करते हैं)

शिञ्जन्नूपुर पाद कङ्कण महामुद्रासुलाक्षारसा-
लंकाराङ्कितमङ्घ्रि पङ्कजयुगं श्रीपादुकालंकृतम् ।
उद्भास्वन्नखचन्द्रखण्ड रुचिरं राजज्जपासन्निभं-
ब्रह्मादि त्रिदशा सुरार्चितमहं मूर्ध्नि स्मराम्यम्बिके ।।

व्याख्या—

हे अम्बिके हेमाता महात्रिपुरसुन्दरी मैं—(दुर्वासा मुनि] ते [तुम्हारे] शिञ्जन्नूपुर-शिञ्जन-अव्यक्त मधुर ध्वनि करने वाले नूपुर [पायजेब] पैर में पहिनें जाने वाला आभूषण तथापाद कङ्कण पाद कटक चरणों का भूषण यद्यपि "कङ्कणं कर—भूषणं" के अनुसार कङ्कण हस्त भूषणों को कहते हैं, तथापि पाद शब्द के साहचर्य से चरण भूषण का अर्थ हैं। यह पाद कटक नूपुर से ऊपर पहना जाता है यतः त्रिपुर-सुन्दरी की चतुष्षटयुपचार पूजा में "४ श्री ललितायै पाद कटकं परिकल्पयामिनमः, ४ श्रीललितायै रत्ननूपुरं कल्पया-मिनमः" ऐसा क्रम है। महामुद्रासामुद्रिक पादचिह्न और लाक्षारस अलक्तक [अलता] इनसे अलङ्काराङ्कित अलङ्कृत किया हुआ तथा अंकित चिह्नित अर्थात् अलते सें चरणों में अनेक प्रकार की पत्र रचना की गयी। अर्थात् भगवती के चरणों में नूपुर और पाद कटक मधुरध्वनि कर रहे—हैं और महामुद्रा से सुशोभित अलक्तक से पत्र रचना प्रत्यक्ष सुन्दर

दिखाई दे रही है। 'श्रीपादुकालङ्कृतम्' चिन्तामणि विरचित पादुका पैरों में पहिनने योग्य वस्तु खड़ाऊँकाष्ठपादुका निर्धन व्यक्ति पहिनता है। भगवती की पादुका-चिन्तामणि नामक रत्न से निर्मित है। 'उद्भास्वन्नख चन्द्र' उद्भास्वत् ऊपर की ओर प्रकाशमान 'नख नन्द्र खण्ड रुचिरं'–नखरूप चन्द्रखण्डों से—मनोहर [सुन्दर] भगवती के नख चन्द्रखण्डों के—समान चमकीले हैं। 'नखचन्द्रखण्ड' रूपकालङ्कार, 'राजज्जपा सन्निभं'–तत्काल खिले हुए जपापुष्पों के समान कान्तिवाले अर्थात् रक्तवर्ण 'ब्रह्मादि त्रिदशा' ब्रह्मा, विष्णु रुद्र त्रिदश इन्द्रादि देवताओं का समूह [त्रिदश देवताओं का नाम है] 'अंघ्रिपङ्कजयुगं'–अङ्घ्रि पंकज चरण कमलों का युग-जोड़ा अर्थात् तुम्हारे चरण कमलों को 'मूर्धिन्'–अपने मस्तक में स्मरण करता हूं [चिन्तयामि] अर्थात् मैं [दुर्वासामुनि] भावना करता हूं कि तुम्हारे चरण कमल में इस पद्य का सरल अर्थ निम्नलिखित रूप में होगा :—

हेमातात्रिपुर सुन्दरि तुम्हारे चरणों में मधुर ध्वनि करते हुये पायजेब [नूपुर] तथापाद कटक सुशोभित हो रहे हैं। महामुद्रा तथा अलक्तक से [तुम्हारे पाद पंकज] विभूषित हैं। वे चिन्तामणि की–पादुकाओं से अलङ्कृत तथा ऊपर की ओर प्रकाश-मान चन्द्रमा के समान नखों से प्रकाशित है, तत्काल-विकसित [खिले हुये] जपाकुसुमों के समान रक्तवर्ण ब्रह्मा, विष्णु रुद्र और इन्द्रादि देवताओं से तथा असुरों से स्वाभिलषित सिद्धि प्राप्ति के लिये सर्वदा समर्चित तुम्हारे चरण कमलों को मैं [दुर्वासामुनि] सर्वदा अपने शिर के ऊपर (मस्तक में) स्मरण करता हूं उनका ध्यान करता हूं।

चरणवर्णनाऽन्तर अब श्री परदेवता के सुन्दर—विभूषितनितम्ब विम्ब की स्तुति करते हैं :—

आरक्तच्छविनातिमार्दवयुजा निश्वासहार्येण सत्—
कौशेयेन विचित्ररत्नखचितैर्मुक्ताफलैरुज्ज्वलैः ।
कूजत्काञ्चनकिङ्किणीभिरभितः सन्नद्धकाञ्चीगुणै
रादीप्तं सुनितम्बबिम्बमरुणं ते पूजयाम्यम्बिके।।३२।।

व्याख्या :—

हेअम्बिके हेमातात्रिपुर सुन्दरि ! 'अति—मार्दव युजा' अत्यन्त कोमल (मुलायम) इसलिये—'निश्वास हार्येण'—श्वासोच्छ्वास वायु से कम्पन योग्य अर्थात् सांस लेने में जो हवा भीतर से बाहर निकलती है उससे हिलने वाला [अत्यन्त सूक्ष्म और मुलायम] 'आरक्तच्छविना'—अत्यन्तरक्त [लाल] कान्तिवाले [शोभा—वाले] रक्तवर्ण सत्कौशेयेन—उत्तम रेशमी वस्त्र से—अर्थात् रक्तवर्ण साड़ी से, 'विचत्ररत्नखचितैः—नाना प्रकार के (अनेक जाति के) रत्नों से मणियों से जड़े हुये, 'अत्युज्वलैः—अत्यन्त उज्वल शुभ्र और चमकीलापन ही मोतियों का गुण है, अतएव रहीम (अब्दुलरहीमखानखाना) ने लिखा है :—

"पानीगये न ऊबरे मोती मानुष चून"

'मुक्ताफ़लैः—बड़े बड़े हाथियों के मस्तकों से उत्पन्न मोतियों से मोती अधिकता से तो समुद्र में सीप से ही

निकलते हैं किन्तु हस्तियों के गण्डस्थल से भी मोतियों की उत्पत्ति मानी गयी है, अतएव महात्मा तुलसीदास जी ने श्री रामचन्द्र जी के विषय में लिखा है :—

"गजमुक्ता कण्ठा कलित उर तुलसी की माल,
वृषभ कन्ध केहरि ठवनि बलनिधि बाहु विशाल"

तुलसीकृत रामायण

बालकाण्ड (धनुषयज्ञ)

अर्थात् रामचन्द्र जी कण्ठ में गजमुक्ताओं का कण्ठा धारण किये हुये थे। 'कूजत्काञ्चन किङ्किणीभि' :—शब्द करती हुई (बजती हुई) किङ्किणियों से सोने की क्षुद्र घंटिकाओं से अभित :—चारों ओर से 'सन्नद्ध काञ्चीगुणैः रत्न-जटित (खचित) मोतियों से बनी हुई काञ्ची के कटिमेखला के (स्त्रियों की कमर के आभूषण) (कमरबन्ध) का नाम मेखला, काञ्ची, रशना आदि हैं।

सूत्रों से 'आदीप्तं'—(आसमन्तात् दीप्तं') चारों ओर से अत्यन्त प्रकाशमान् 'ते'—तुम्हारे (श्री महात्रिपुरसुन्दरी के) 'अरुणं—रक्त वर्ण, लाल साड़ी सें आच्छादित होने से जो रक्तवर्ण दीख रहा है 'सुनितम्बबिम्बं'—सु = सुन्दर (मनोहर) नितम्बबिम्बं नितम्बमण्डलं' श्रोणिमण्डल को, स्त्रियों का कटिपश्चात् भाग नितम्ब कहलाता है "पश्चान्नितम्बः स्त्री कट्या" अमरकोश। 'अहं' (मैं दुर्वासा मुनि) 'पूजयामि—अपने मन में उसकी भावना करता हूं। पूजयामि के कर्ता 'अहं' शब्द को अपनी ओर से लगाना पड़ता है।

इसका सरल अर्थ निम्न प्रकार है :–

हे मातः त्रिपुरसुन्दरि ! अत्यन्त मृदु (कोमल) होने से जो सांस लेने में भी (निश्वास वायु से) हिलने लगता है अथवा रक्तवर्ण रेशमी वस्त्र से (लाल रंग की साड़ी से) जिससे नाना प्रकार की रंगविरंगी मणियाँ जड़ी हुई हैं तथा अत्यन्त समुज्वल (शुभ्रवर्ण) गजमुक्ताओं से युक्त और मधुर ध्वनि करती हुयी सोने की क्षुद्र-घंटिकाओं से प्रदीप्तं चमचमाता हुआ रक्तव सना-व्रत होने से स्वयं रक्तवर्ण तुम्हारे नितम्ब-बिम्बका ध्यान करता हूं। अर्थात् उसकी भावना करता हूँ।

टिप्पणी :—

अम्बिके ! अम्बैव अम्बिका,

जगन्माता भारती पृथ्वी रुद्राण्यात्मकेच्छाज्ञान क्रिया–शक्तीनां समष्टि रम्बिकेत्युच्यते तद्रूपा। रात्रिरूपा निद्रा रूपावा, अम्बिका कैतवे सिद्धे निद्रायां निशि कीर्त्यते इति विश्वः। उक्तञ्च नवरात्र प्रदीपेस्कन्दे "रात्रिरूपा महादेवी दिवारूपोमहेश्वरः" इति अर्थात् जगन्माता भारती (सरस्वती) पृथ्वी और रुद्राणी स्वरूप इच्छा शक्ति, ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्तियों की समष्टि रूप अम्बिका महात्रिपुरसुन्दरी मानी गयी है "अपर्णा पार्वती दुर्गा मृडानी चण्डिकाऽम्बिका" इस अमर कोश के अनुसार अम्बिका भगवती पार्वती का नाम भी है।

अम्बिका शब्द कई पद्यों में प्रयुक्त हुआ है अतएव इस पद के विषय में उपयु‍र्क्त टिप्पणी दे दी गयी है।

: ३३ :

अब चन्दन से आलिप्त मणि और मोतियों की माला से सुशोभित ब्रह्मादिकों के स्तन्य (दुग्ध) पाने के योग्य भगवती के कुच कुम्भों की स्तुति करते हैं :—

कस्तूरीघनसारकुंकुमरजोगन्धोत्कटैश्चन्दनै-
रालिप्तं मणिमालयातिरुचिरं ग्रैवेयहारादिभिः।
दीप्तं दिव्यविभूषणैरगणितैर्ज्योतिर्विभास्वत्कुच-
व्याजस्वर्णघटद्वयं हरिहरब्रह्मादिपीतं भजे ॥३३॥

व्याख्या :—

हे जननि कस्तूरी घनसार० कस्तूरी कस्तूरा नामक मृग की नाभि से पैदा होने वाला मृगमद (मृगकामद) नाम का प्रसिद्ध द्रव्य (मुश्क) घनसार कर्पूर, टीकाकार ने घनसार का अर्थ अगरुसत्वं [कालागरु का सत्व] भी लिखा है कुङ्कुम काश्मीर देश में पैदा होने वाला प्रसिद्ध द्रव्य, कुङ्कुम नाम रक्त चन्दन भी है।

काश्मीर जन्माऽग्निशिखंबरंवाहीक पीतने
रक्त संकोच [संकोचन] पिशुनं धीरं लोहित चन्दनम् ॥

ये उपर्युक्त ग्यारह नाम कुङ्कुम के हैं (अमर कोश) इनके रजोगन्ध से (बारीक चूर्ण के गन्ध से) उत्कट (तेजगन्धवाले) चन्दनैः चन्दन से (घिसे हुये चन्दन से) मलय पर्वत से होने वाला चन्दन उत्तम माना जाता है अतएव

उसका नाम मलयज भी है। आलिप्तं आसमन्तात्लिप्तं (चारों ओर से लेप किया गया) मणिमालया हीरे और वैडूर्य आदि मणियों की माला से अतिरुचिरं अत्यन्त चमकीले) (तेजोयुक्त) मणियों की उत्पत्ति के विषय में विष्णु रहस्य में लिखा है :—

पृथिव्यां नीलसंज्ञानं अद्भ्योमुक्ता फलानिच
तेजसः कौस्तुभो जातः वायो वैंडूर्यसंज्ञकम् ॥
पुष्करात् पुष्पराजस्तु वैजयन्त्या हरेरिमे ॥

अर्थात् नीलम पृथ्वी से, मोती जल से (सीप जल में रहती है) कोस्तुभ तेज से, वैडूर्य वायु से और पोखराज पुष्कर से उन्पन्न होता हैं।

गैवेय हारादिभि ग्रैवेय ग्रीवा में [गले में] धारण करने योग्य [कण्ठभूषण, हार गजमुक्ताओं से बना हुआ हार, आदि अन्य पुष्पादिकों की मालाओं से भी दीप्तं प्रकाशमान, अगणितैः गणना से रहित [जिनकी गणना नहीं की जा सकती] दिव्य विभूषणै स्वर्गीय आभूषणों से [देव शिल्पी विश्वकर्मा द्वारा निर्मित] स्वर्गलोक के स्वर्णकार विश्वकर्मा हैं, ये केवल स्वर्णकार ही नहीं इन्जीनियर भी हैं। ज्योतिर्भास्वत् ज्योति के समान प्रकाशमान (चमकने वाले] हरिहर ब्रह्मादिपीतं ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रादि देवों से पान किया गया यतः भगवती के कुचों को पीने का अधिकार उक्त देवों का मैं [दुर्वासा ऋषि ही हैं] तुम्हारे कुचव्याज स्वर्ण घटद्वयं स्तनों के मिष से जो दो स्वर्ण कलशों के तुल्य हैं अर्थात् भगवती के दो स्तन

काञ्चन कलशों के समान हैं उनको भजे अपने मन में उनकी भावना करता हूं।

उक्त पद्य का सरल अर्थ निम्नलिखित प्रकार से होगा:—

हे जननि ! कस्तूरी कर्पूर तथा अगरु और कुङ्कुम से संयुक्त मिश्रित [मिला हुआ] चन्दन के प्रलेप से युक्त [चन्दन प्रलेपित] हीरे तथा वैडूर्य आदि मणियों की माला से प्रकाशित, कण्ठभूषण [कण्ठहार—आदि तथा मणियों की माला से प्रदीप्त, अगणित स्वर्गीय आभूषणों से [विश्वकर्मा द्वारा विरचित] ज्योतिर्मय किये गये [प्रकाशित] ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रादि देवों से जिनका दुग्धामृत पान किया गया है ऐसे तुम्हारे कुचों के व्याज से दो स्वर्ण कलशों की मैं [दुर्वासा मुनि] अपने हृदय में भावना करता हूं।

टिप्पणी :—

स्वर्णघटद्वयं हरिहर ब्रह्मादिपीतम्, विष्णु शिव और ब्रह्मादि देवों ने जिन स्वर्ण कलशों में भरे हुए दुग्धाऽमृत का पान किया है। स्तनपान करने का स्वाभाविक अधिकार पुत्रों का ही होता है। ब्रह्मा विष्णु और शिव भगवती के पुत्र रूप हैं इसका वर्णन श्री देवी भागवत में विशद रूप से आया है, हम स्थाली पुलाकन्यायेन दो चार पद्य उद्धृत करते हैं :—

चारों वेद भगवती की स्तुति करते हैं :—

सकल भुवन मेतत्कर्तुकामा यदात्वं
सृजसि जननि देवान्विष्णु रुद्राजमुख्यान्
स्थितिलयजननं तैः कारयस्येकरूपा
नखलु तव कथञ्चि द्देवि ! संसार लेशः ॥

देवी भागवत प्र. स्कंध
५वां अध्याय

चारों वेद भगवती की स्तुति करते हैं कि जब आप संसार की रचना करने की इच्छा करती हैं तब विष्णु, शिव और ब्रह्मा को पैदा कर उनके द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति और लय कराती हैं।

ब्रह्मा सृजत्यवति विष्णुरुमापतिश्च
संहारकारक इयं तु जने प्रसिद्धिः।
किं सत्यमेतदपि देवि तवेच्छया वै
कर्तुं क्षमा वयमजे तवशक्ति युक्ताः।

३ स्कन्ध ४ अध्याय

अर्थात् श्री भगवान् विष्णु स्तुति करते हैं कि संसार में यह बात प्रसिद्ध है कि ब्रह्मा पैदा करते हैं, विष्णु रक्षा करते हैं और शिव संहारकारक हैं। क्या यह बात सत्य है ? यदि ठीक है तो तुम्हारी इच्छा से ही तुमसे प्रदत्त शक्ति द्वारा हम ऐसा करने में समर्थ हैं।

श्री शिव कृता श्री जगदम्बा स्तुति. दे भा. ३ स्कंद ५—अ

नच विदन्ति वदन्ति च येऽन्यथा
हरिहराजकृमं निखिलं जगत्।
तव कृतास्त्रय एव सदैव ते
विरचयन्ति जगत् सचराचरम्॥

भगवान शिव स्तुति करते हैं कि हे भगवति जो लोग यह कहते हैं कि अखिल जगत् के निर्माता तीनों देवता हैं वे कुछ नहीं जानते अतएव वे ऐसा कहते हैं। तुमसे उत्पन्न

[तुम्हारे बनाये हुये] ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र चराचर जगत् का कार्य करते हैं।

पुनः स्तुति करते हैं :—

तव गुणास्त्रय एव सदा क्षमाः
प्रकटनावनसंहरणेषु वै।
हरिहरद्रुहिणाश्च क्रमात् त्वया
विरचिता जगतां किल कारणम् ॥

अर्थात् तुम्हारे सत्व, रज और तम ये तीनों गुण संसार की उत्पत्ति स्थिति और संहार करने में समर्थ होते हैं अतएव तुमने ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र को बनाया (उत्पन्न किया) जो कि संसार के कारण कहलाते हैं।

ब्रह्मा जी अपने मुख से स्वयं अङ्गीकार करते हैं कि तुम अपनी दृष्टि मात्र से संसार पैदा कर सकती हो किन्तु अपने मनोविनोद के लिये सबसे पहले [आदि सर्ग] मुझे उत्पन्न कर सृष्टि का कार्य कराती हो।

न किं त्वं समर्थासि विश्वं विधातु
तथैवासु सर्वां चतुर्धा विभक्तुम्
विनोदार्थमेवं विधिं मां विधायाऽऽ
दिसर्गे किलेदं करोषीति कामम् ॥

(इसका सारांश ऊपर लिख दिया गया है)

एक बार भगवती ने तीनों देवों को अपने साथ विमान में बैठा कर अपनी माया से कल्पित नवीन तीनों लोकों में

(ब्रह्मा, विष्णु और शिवलोकों में) घुमाकर उनका अभिमान दूर किया था शिवजी निम्नलिखित स्तुति में इस बात को स्वीकार करते हैं :—

परिचितानिमया हरिणा तथा कमलजेन विमानगतेन वै पथिगतैर्भुवनानि कृतानि वा कथय केन भवानि ! नवानि च ।।

हे भगवति विमान में बैठकर मैंने (शिव ने) विष्णु ने और ब्रह्मा ने आपकी माया से विरचित भुवनों को अपने अपने लोकों को देखा तो बताओ ये नवीन ब्रह्मा, विष्णु और शिवलोक किसने रचे हैं ? यह सब आपकी अनिर्वचनीय माया है ।

ये पद्य देवी भागवत के प्रथम और तृतीय स्कंध से लिये गये हैं विशेष पाठक वहीं पर देख सकते हैं ।

देवी भागवत के चतुर्थ स्कन्ध में भी सृष्टि के विषय में लिखा है–

तया युक्तः सृजेद्ब्रह्मा विष्णु पाति तयान्वितः ।
रुद्रः संहारतेकामं तया सेमीलितो जगत् ।।

भगवान् शंकराचार्य ने भी सौन्दर्य लहरी में लिखा है :

जगत् सूते धाता हरिरवति रुद्रःक्षपयते
तिरस्कुरुवन्नेतत्स्वमपि वपुरीशस्तिरयति ।
सदा पूर्वस्सर्वं तदिदमनुगृह्णाति च शिव
स्तवाज्ञामालम्ब्य क्षणचलितयोर्भ्रूलतिकयोः ।।२४।।

अर्थात् ब्रह्मा जगत् को उत्पन्न करता है—विष्णु रक्षा करता है और रुद्र उसका संहार करता है । और महेश्वर

ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के साथ अपने आपको भी सदाशिव तत्व में अन्तर्हित कर लेता है। इस प्रकार ब्रह्माण्ड का प्रलय हो जाता है। पुनः सदाशिव की ब्रह्माण्ड को पैदा करने की इच्छा होने पर सदाशिव तत्व की भगवती के भ्रू विक्षेप मात्र की शक्ति से ब्रह्मा, विष्णु रुद्र और ईशानात्मक तत्व चतुष्टय के ऊपर कृपा करते हैं।,अर्थात् भगवती के भ्रू विक्षेप-मात्र से उपर्युक्त तत्व चतुष्टय तत्व उत्पन्न होकर संसार का कार्य करने लगता है और भृकुटी टेढ़ी करने से वह विनष्ट हो जाता है, सारांश यह है कि भगवती की भ्रू विक्षेप मात्र रूपिणी शक्ति सदा शिव का साचिब्य करती है।

अब परदेवता की चारों भुजाओं तथा कण्ठ देश की स्तुति करते हैं—

मुक्तारत्नविचित्रकान्तिललितैस्तेबाहुबल्लीरहं
केयूराङ्गदबाहुदण्डवलयैर्हताङ्गुली भूषणैः
संपृक्ताः कलयामि हीरमणिमन्मुक्तावली कीलित-
ग्रीवापट्ट विभूषणेन सुभगं कण्ठं च कम्बुश्रियम् ।३४।

व्याख्या :—

हे माता त्रिपुरसुन्दरी ! मैं दुर्वासा मुनि तुम्हारी मुक्ता-रत्न० मुक्ता (गजमुक्ता) मोती रत्न हीरे आदि की विचित्र नानारङ्ग की कान्ति से छवि से (शोभा से) ललित मनोहर (सुन्दर) केयूराङ्गदबाहुदण्डवलयै० केयूर मणिबन्ध के स्थान पर पहिनने योग्य आभूषण [आजकल मणिबन्ध का स्थान रिष्ट वाच ने (स्त्रियों की हाथ की घड़ी ने ले लिया है) । अङ्गद वाजूवन्द [भुजाओं पर पहिने जाने वाला भूषण] वाहुदण्ड के समान लम्बी भुजायें, लम्बी होना सामुद्रिक शास्त्रानुसार उत्तम मानी गयी हैं, अतएव गोस्वामी तुलसी-दास जी ने श्री रामचन्द्र जी को आजानुवाहु लिखा है :—

"श्री रामचन्द्र कृपालु भजमन हरण भवभय दारुणं, आजानु वाहु विशाल भुज शर चाप धर, संग्रामजित खर-दूषणं" इत्यादि छन्द आजानुवाहु का अर्थ है जिसकी भुजायें जानुपर्यन्त लम्बी हो उन पर धारण किये गये वलयों से तथा कङ्कणों से [वलय = हस्तकटक] हस्तांगुली भूषणैः हाथ की अंगुलियों के भूषणों से, (अंगुलीयक मुद्रिका (मुंदरी) अंगूठी)

संप्रक्ताः संयुक्त ते तुमारी वाहुवल्ली चार भुजा रूपी लताओं को (रूपक अलङ्कार) महात्रिपुर सुन्दरी की मूर्ति चतुर्भुजी है, आगे दुर्वासा मुनि भगवती की चार भुजाओं के आयुधों का वर्णन स्वयं करेंगे । हीर मणिमन्मुक्तावली० हीरमणिमन्– हीरे के बने हुए मनकों से (दानों से) युक्त मुक्तावली मोतियों से [गजमुक्ताओं स] कीलित जड़ा हुआ (खचित) ग्रीवापट्ट विभूषण ग्रीवा कण्ठ (गला) में धारण किये जाने वाला पट्ट विभूषण मुख्य आभूषण गुलूवन्द आदि, पद का अर्थ यहाँ पर मुख्य है, जैसे पट्ट राज्ञी (पटरानी) उससे सुभगं सुन्दर (मनोहर) कम्वुश्रियं कम्वुके शङ्ख के समान श्री वाला शोभावाला, गले पर शङ्ख की उपमा दी जाती है, शङ्ख पर जिस प्रकार तीन रेखायें होती हैं उसी प्रकार बड़े भाग्यशाली महापुरुषों की ग्रीवा पर तीन रेखाओं का सामुद्रिक शास्त्रानुसार उत्तम लक्षण माना गया है अतएव संस्कृत साहित्य में स्त्रियों के लिए कम्वुकण्ठी प्रयोग आता है, कण्ठं तुम्हारे कण्ठ को कलयामि अर्थात् तुम्हारे सुन्दर कम्वुकण्ठ की भावना करता हूँ ।

इस पद्य का संक्षिप्तार्थ निम्नलिखित प्रकार से होगा ।

हे माता त्रिपुरसुन्दरी मैं तुम्हारा सेवक दुर्वासा मुनि मोती (गजमुक्ता) और हीरे आदि रत्नों की विचित्र कान्ति से मनोहर कयूर और अङ्गद (वाजूवन्द) तथा हस्तकटक और कङ्कणों से तथा हाथ की अंगुलियों आभूषणों से (अंगूठियों से) संयुक्त तुम्हारी चार भुजाओं को तथा हीरे और मोतियों से जड़े हुए तुम्हारे कण्ठ के मुख्य आभूषण से [गुलूबन्द से] सुशोभित (मनोहर) शङ्ख के तुल्य शोभावाले तुम्हारे कण्ठ की भावना अपने मन में करता हूँ ।

अब परदेवता के सुप्रसन्न मुखमण्डल की स्तुति करते हैं :-

उद्यत्पूर्णकलानिधिश्रिवदनं भक्तप्रसन्नं सदा
संफुल्लाम्बुज पत्र कान्ति सुषमाधिक्कार दक्षेक्षणम् ।
सानन्दं कृतमंदहासमसकृत् प्रादुर्भवत्कौतुकं
कुन्दाकार सुदन्तपङ्क्ति शशिभापूर्ण स्मराम्यम्बिके।३५।

व्याख्या :—

हे अम्बिके हे माता त्रिपुर सुन्दरि अहं मैं दुर्वासा मुनि उद्यतपूर्ण० उद्यत् उदय हुआ (उगा हुआ) पूर्ण कलानिधि संपूर्ण (पूरा) कलानिधि [कलानांनिधिः]—कलातु "षोडशोभागः" चन्द्रमा का सोलहवाँ भाग [हिस्सा] कला कहाता है, पूर्णमासी के [पूनों के] चन्द्रमा के समान शोभा वाले, सदा सवदा हमेशा भक्तप्रसन्नं के अपने उपासकों के [सेवकों के ऊपर] प्रसन्न [खुश] प्रसन्नता से मनोभिलाष की प्राप्ति की सूचना मिलती है, सदा [यह सदा शब्द] [पद] देहली दीपक न्याय से दोनों पदों के साथ लगता है। समुत्फुल्लाम्बुज पत्र० समुत्फुल्ल विकसित [खिला हुआ] अम्बुज पानी में पैदा होने वाले [अम्बु = जलज = पैदा) कमल के पत्र कान्ति पत्रों की (पंखुड़ियों की) कान्ति सुषमा परमा शोभा "सुषमा परमा शोभा कांति द्युतिश्छवि" अमरकोश। को धिक्कारदक्ष धिक्कार देने में दक्ष [तिरस्कृत करने में चतुर] ईक्षण = नेत्र 'ईक्षणं चक्षु रक्षिणी' अमरकोश। ऐसे नेत्रों से युक्त (यह पद वदन का विशेषण है] सानन्दं आनन्दपूर्वक (क्रिया विशेषण) कृतमन्द हासं जिससे मन्दहासं ईषद् हास झलक रहा है अर्थात्

सस्मित । असकृत सकृत् एक बार अ = नहीं असकृत् अर्थात् बार-बार (अव्यय) प्रादुर्भवत्कौतुकं जिससे कुतूहल प्रकट हो रहा है "कौतूहलं कौतुकंच कुतुकञ्च कुतूहलम्" ये कौतुक के नाम हैं । कुन्दाकार सुदन्त पंक्ति, कुन्द पुष्प यहाँ पर कलिका का अर्थ है कुन्द पुष्प जाड़ों में खिलता है, कुन्दन कलिकाओं के समान सुशोभित दंत पंक्तियुक्त, (सु—शोभना-दन्त पंक्ति दाँतों की पंक्ति) कुन्द पुष्प सफेद होता है, और दाँतों पर कुन्द कलिकाओं की उपमा दी जाती है—

"मेघागमे कुन्द समान दन्ती" इत्यादि महाकवि प्रयोग देखा जाता है । दाँत शुभ्र और नुकीले होना सामुद्रिक शास्त्र में शुभ लक्षण माना गया है । शशिभापूर्ण चन्द्रमा की कान्ति के समान कान्ति छवि (चमक) से पूर्ण व्याप्त ते तुम्हारे वदनं मुख मण्डल को स्मरामि स्मरण करता हूँ । अर्थात् अपने हृदय में उसकी भावना करता हूँ ।

इस पद्य का संक्षिप्तार्थ (सरल अर्थ) निम्न प्रकार से होगा ।

हे माता त्रिपुर सुन्दरि मैं दुर्वासामुनि तुम्हारी पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान सुशोभित सर्वदा भक्तों के ऊपर प्रसन्न अच्छे प्रकार से खिली हुयी कमल की पंखुड़ियों की शोभा को तिरस्कृत करने वाले लोचनों से (नेत्रों से) युक्त आनन्द पूर्वक मन्दहास कर रहे तथा हृदय में कौतुक पैदा करने वाले कुन्द की कलिकाओं के समान दन्त पंक्ति से सुशोभित चन्द्रमा के समान कान्ति से (आह्लादित करने वाली चमक से) परिपूर्ण तुम्हारे मुखमण्डल का अपने हृदय में स्मरण करता हूं ।

मुख मण्डल की वर्णना के उपरान्त श्री परदेवता के सुभूषित कर्ण युग तथा नासाग्र भाग की स्तुति करते हैं :—

तप्तस्वर्णकृतोरुकुण्डलयुगं माणिक्यमुक्तोल्लस
द्धीरावद्धमनन्यतुल्यमपरं हैमंच चक्रद्वयम् ।
शुक्राऽऽकारनिकारदक्षममलं मुक्ताफलं सुन्दरम् ।
विभ्रत् कर्णयुगं भजामि ललितं नासाग्रभागं शिवे ।३६।

व्याख्या :—

हे शिवे हे अम्बिके ! (हे माता) "शिवा भवानी रुद्राणी मृडानी चण्डिकाम्बिका" अमरकोश । शुक्राऽऽकार निकारदक्षं शुक्र आकार शुक्र ग्रह का आकार स्वरूप आकाश में शुक्र ग्रह के उदय के समय शुक्र ग्रह (शुक्र तारा) और ग्रहों की अपेक्षा अधिक चमकीला दिखाई देता है उसके निकार दक्षं तिरस्कार करने में चतुर अर्थात् शुक्र ग्रह से भी अत्यन्त प्रभापूर्ण अत-एव अमलं निर्मल (स्वच्छ) ललितं मनोहर (सुन्दर) मुक्ता फ़लं गज मौक्तिक को (हस्ती से उत्पन्न मोती को) विभ्रत् धारण करने वाले नासाग्रभाग नाक के अग्र भाग को (नासा = नाक) अर्थात् नाक के अग्रभाग में मोती लगा हुआ है। च और तप्तस्वर्णकृतोरुकुण्डलयुगं तप्त स्वर्ण आग में तपाये गये सोने से सोने को आग में तपाने से उसका असली रूप [चमक] निखर जाता हैं, खोटा सोना आग में तपाने से काला हो जाता है उसकी चमक चली जाती है। "यथा

चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते निघर्षणच्छेदन ताप ताडनैः" उरु विस्तीर्ण [बड़े] कुण्डलों के जोड़े को कुण्डल कानों का प्रसिद्ध आभूषण, माणिक्य मुक्तोल्लसद्धीरावद्धं माणिक्य मणियां मुक्ता मोती [गजमुक्ता] हीरे इनसे आबद्धं खचित जड़े हुये अर्थात् जिनमें मणि मुक्ता और हीरे जड़े हुये हैं, अनन्यतुल्यं जिनकी समानता दूसरे नहीं कर सकते अपरं दूसरे चक्रद्वयं चक्रों के जोड़े को अर्थात् गोलाकार वाले कर्णाभरणों को [कानों के ऊर्ध्व भूषणों को] [वालियों को] विभ्रत् धारण करने वाले कर्णयुगं [कर्णयोर्युगं] दोनों कानों को (कानों के युग्मको) अहं मैं तुम्हारा सेवक दुर्वासा मुनि भजामि भजन करता हूं, अर्थात् तुम्हारे नासाग्र भाग का तथा कर्णयुग का अपने हृदय में ध्यान करता हूं। उपमालङ्कार।

यहां पर शुक्राकार निकार दक्षं अमलं सुन्दरं मुक्ताफलं विभ्रत् ये विशेषण कर्ण युगं तथा नासाग्र भागं दोनों की ओर लगते हैं।

इस पद्य का सरल अर्थ संक्षेप में निम्न प्रकार से होगा :—

हे शिवे हे माता त्रिपुर सुन्दरि ! शुक्रग्रह की कान्ति का तिरस्कार करने वाले निर्मल मोतियों से युक्त तुम्हारे नासाग्र भाग का तथा आग में तपाये गये सोने से विनिर्मित तुम्हारे कानों के विस्तार युक्त कुण्डलों को तथा मणियों मोतियों और हीरकों से (हीरे) जटित (जड़े हुये) उपमारहित काञ्चन घटित (सोने से बने हुये) द्वितीय कानों के ऊर्ध्व भूषणों युगल को (ताटङ्क युगल का वालियों के जोड़े का) मैं दुर्वासा मुनि अपने हृदय में ध्यान करता हूं।

: ३७ :

अब श्री परदेवता की वेणी का स्तुति रूप में वर्णन करते हैं –

जातीचम्पक कुन्दकेसररजो गन्धोत्किरत्केतकी-
नीपाशोकशिरीषमुख्यकुसुमैः प्रोत्तंसिताधूपिता ।
आनीलाञ्जन तुल्यमत्तमधुपश्रेणीव वेणीतव
श्री मातः श्रयतां मदीय हृदयांभोजं सरोजालये ।३७।

व्याख्या :—

हे सरोजालये हे कमल वन में निवास करने वाली [आलय निवास स्थान] यद्यपि "लक्ष्मी पद्मालयापद्मा कमला श्रीर्हरिप्रिया" अमरकोश के इन नामों के अनुसार हे सरोजालये से लक्ष्मी का ज्ञान होता है तथापि श्री विद्या भी महापद्माटवी में महा कमल वन में निवास करती है अतएव श्री महात्रिपुरसुन्दरी की मन्दिर पूजा में ४ महापद्माटव्यै नमः चार के अंक में चार बीजाक्षरों का बोध होता है। महापद्माटवी के [महा पद्मवन के] मध्य में चिन्तामणि ग्रहराज हैं आवाहन मन्त्र में—

महापद्मवनान्तस्थे ! कारणानन्द विग्रहे !
सर्वभूतहिते मातः एह्येहि परमेश्वरि ।।

स्पष्टतया महापद्मवनान्तस्थे [हेसरोजालये कहा गया है] यद्यपि श्री शब्द से श्रीविद्या तथा लक्ष्मी का भी बोध

होता है तथापि यहां पर सरोजालये यह सम्बोधन श्री महात्रिपुर सुन्दरी के लिये ही कवि को अभीष्ट है। श्रीमातः हे माता त्रिपुर सुन्दरि जाती चम्पक कुन्दकेसर रजो० जाती पुष्प [मालती पुष्प] प्रसिद्ध है चम्पक चम्पा कुन्द पुष्प [यह पुष्प जाड़ो में खिलता है] केकर वकुल (मौलसिरी) अथवा केसर पुन्नांग (देववल्लभ) को भी कहते हैं इन पुष्पों के बिखरे हुए पराग के गंध से मिश्रित केतकी केवड़ा नीप कदम्ब पुष्प अशोक और शिरीष (यह पुष्प अत्यन्त कोमल होता है) अतएव शिरीष मृद्वी गिरिषु प्रपेदे यदा यदा दुःख शतानि सीता" इत्यादि प्रयोग देखने में आते हैं" के पुष्पों से गुथी हुयी तथा कालागरु की धूप से धूपित [जिसको अच्छी प्रकार से धूप दी गयी है। भगवती को चतुःषष्ठ्युपचार पूजा में "४ श्री ललितायै कालागुरुधूपं परिकल्पयामिनमः" एक उपचार है आनीलाञ्जन तुल्य मधुपश्रेणीव—आचारों ओर से नीलाञ्जन श्यामल (श्याम वर्ण का) अञ्जन आँख में लगाने के अञ्जन के तुल्य समान अर्थात् श्याम वर्ण मत्त पुष्प रस पीकर उन्मत्त मधुप (मधुपुष्प रस को पान कराने वाले] भ्रमरों (भौंरों को श्रेणी एवं पंक्ति के समान श्यामल तुम्हारी वेणी (चोटी धम्मिल्ल) मदीय हृदयांभोजं मेरे हृदय रूपी कमल में (रूपकालङ्कार) श्रयतां आश्रयलेवे वेणी को मधुप श्रेणी की उपमा दी गयी है अतएव हृदय को अम्भोज (कमल) बनाया गया है, यतः भौंरे (भ्रमर) कमल में बैठते हैं। अर्थात् हे माता तुम्हारी वेणी मेरे हृदय में बिराजती रहे मैं उसका ध्यान सर्वदा करता रहूं।

इस पद्य का सरल अर्थ निम्नलिखित प्रकार से होगा :—

हे महापद्मवन में (सरोजालय में) निवास करने वाली त्रिपुर सुन्दरी माता जाती चम्पा कुन्द और वकुल पुष्पों के बिखरे हुए पराग के गंध से मिश्रित केवड़ा, कदम्ब, अशोक और शिरीष के पुष्पों से गुथी हुयी तथा कालागरु की धूप से धूपित (सुगंधित की गयी) पुष्पों के रस को (मकरन्द को) पीकर उन्मत्त कज्जल के समान श्याम वर्ण भ्रमरों की पंक्ति के समान श्याम वर्ण तुम्हारी वेणी [चोटी धम्मिल्ल] सर्वदा मेरे हृदय कमल में [मेरे मन में] बसी रहे। अर्थात् मैं उसका ध्यान करता रहूं।

टिप्पणी :—

महापद्मवन और महापद्माटवी पर सार पर्याय वाचक हैं। महा पद्मों के वन के भीतर स्थित [निवास करने वाली]। "त्रिलक्ष योजनायाम् महापद्मबनावृतम्" इति रुद्रयामलोक्तमेकम्। ललिता स्तव रत्नोक्तमन्यत् :—

मणिसदन सलिलयो रधिमध्य दशतावभूमि सह दोर्घैः
पद्मैः पयोदवर्णैर्युक्तां काण्डैश्च योजनोत्तुङ्गैः॥
मिलितैस्तालीपञ्चकभागै मिलिताञ्च केसरकदम्बैः
सन्ततगलितमरन्दश्रोतोनिर्यन् मिलिन्दसन्दोहाम्॥
पाटीरपवनवालकघाटी निर्यत्परागपिञ्जरिताम्
पद्माटवीं भजामः परिमलकल्लोलपक्ष्मलोपान्ताम्॥
ब्रह्मरध्रस्थितसहस्त्रदलपद्ममपि पद्माटवी इति

महापद्मवनं वेत्युच्यते उक्तञ्च स्वच्छन्दतन्त्रे-
"तस्मादूर्ध्वं कुलं पद्मं सहस्त्रारमधोमुखम्" ।
इति प्रकम्य—
महापद्मवनं चेदं समानं तस्य चोपरीति" ।
सौभाग्यभास्करव्याख्या ॥

तथाच—

महापद्माटव्यां मृदितमलमायेन मनसा
महान्तः पश्यन्तो दधति परमाह्लादलहरीम् ।२१।
सौन्दर्य लहरी

महान्ति बहूनि पद्मानि पद्मदलानि सहस्त्रसंख्याकानि यस्यांसा अटवी तस्यां सहस्त्रदलकर्णिकायामित्यर्थः अथवा महापद्म सहस्त्रदल कमलंतदेव अटवी तस्यां अर्थात् महापद्म वन एक रुद्रयामलोक्त है जिसकी लम्बाई तीन लाख योजन है तथा दूसरा 'श्री ललिता स्तव रत्न' नाम के ग्रन्थ में श्री दुर्वासा मुनि से वर्णित है, जो कि माणिक्य मण्डप और शालों (प्राकारों) के मध्य में है इस पद्म वन के कमलों के नाल अत्यन्त दीर्घ, पत्ते पयादे मेघ वर्ण हैं तथा कमलों से विनिर्गलित मरन्द (पुरुष रस) के प्रवाह में भ्रमर समूह घूमता रहता है ऐसे पद्मवन (पद्माटवी) का हम दुर्वासा मुनि भजन करते हैं।

ब्रह्मरन्ध्र में स्थित सहस्त्रदल पंकज को भी महापद्मवन अथवा महापद्मावटी कहते हैं। महापद्म सहस्त्रदल कमल को ही अटवी बताया गया है। यह "महापद्माटव्यां मृदित-मलमायेन मनसा" का अर्थ है।

: ३८ :

वेणी के अनन्तर श्री परदेवता के मस्तक की स्तुति करते हैं :—

लेखालभ्यविचित्ररत्नखचितं हैमं किरीटोत्तमं
मुक्ताकांचन किंकिणीगण महाहीरप्रबोधोज्ज्वलम् ।
चंचच्चन्द्रकलाकलापललितं देवद्रुपुष्पार्चितम्
माल्यैरम्ब विलम्बितं सुशिखरं विभ्रच्छिरस्ते भजे ।३८।

व्याख्या :—

हे अम्ब हे माता "अम्बा माता" अमरकोश । लेखालभ्यविचित्ररत्न खचितं लेखाभि: लभ्यं-लेखाओं से पंक्तियों से लभ्यं युक्त विचित्र नाना वर्ण के (रंग के) रत्नों की पंक्तियों से खचित (जड़ा हुआ) "पंक्तिः श्रेणी लेखास्तु राजयः"अमर। तथा युक्तमौपयिकं लभ्यं-भजमाला विनीतवत्" अमर । इतिन्यामादनपेतस्य द्रव्यादे; । अमर । मुक्ताकाञ्चन किंकिणीगण महाहीरप्रवोघोज्ज्वलम् मुक्ता गजमुक्ता और काञ्चन किंकिणियों का (क्षुद्र घटिकाओं का) गण समूह उसके साथ जो बड़े हीरे लगे हुये हैं उनसे प्रकाशमान् । चञ्चचन्द्रकलापललितं—चञ्चत् चमकती हुयी चन्द्रकलाओं के कलाप से ललितं मनोहर (सुन्दर) महात्रिपुरसुन्दरी के शिखर पर चन्द्रकला विराजती है अतएव "चतुर्भुजे चन्द्रकलावतंसे कुचोन्नते कुङ्कुमराग शोणे" इत्यादि भगवती का ध्यान किया गया है ।

इस कोश के अनुसार अवतंस शब्द का अर्थ शेखर का (शिरका) भी होता है। देवद्रुदेवताओं का वृक्ष उसके फूलों से अर्चित पूजित(सजे हुये)माल्यै: अनेक प्रकार की पुष्प मालाओं से "माल्यं माला स्रजौ मूर्ध्नि: वेशमध्येतुगर्भक:" अमरकोश। विलम्बितं अर्थात जिसमें फूलों की मालायें लटकी हुई हैं, यह किरीटं का विशेषश है। सुशिखरं जिसका शिखर [चोटी ऊपर का भाग] बड़ा सुन्दर है, हैमं हेम [सुवर्ण] से बना हुआ [सुवर्ण निर्मित] किरीटोत्तमं किरीटेषु उत्तमं ब्रह्मादिक देवताओं के मुकुटों की अपेक्षा जो सर्वोत्तम है, उसको (किरीटको) बिभ्रत् धारण करने वाले तेरे [त्रिपुरसुन्दरी के] शिर: उत्तमाङ्ग को अर्थात् तुम्हारे मस्तक का मैं हृदय में ध्यान करता हूं।

संक्षेप में इस पद्य का सरल अर्थ निम्न प्रकार से होगा।

हे अम्ब हे माता त्रिपुरसुन्दरी नाना प्रकार की विचित्र मणियों की पंक्तियों से जड़ा गजमुक्ता और सुवर्ण विनिर्मित किंकिणियों में जटित (जड़े हुये) बड़े बड़े हीरकों (हारे) से उज्ज्वल, चन्द्रमा की कलाओं से ललित मनोहर [सुन्दर] कल्पवृक्ष के कुसुमों से सुशोभित तथा अनेक प्रकार की पुष्प मालायें जिसमें नीचे की ओर लटक रही हैं ऐसे तथा सुन्दर शिखर शिरोभाग [चोटी] वाले सुवर्ण मुकुट से अलङ्कृत [सुशोभित] तुम्हारे मस्तक का मैं दुर्वासा मुनि अपने मन में ध्यान करता हूँ।

मस्तक स्तुति के अनन्तर महामुनि दुर्वासा परदेवता के भाल और अधर के साथ शरीर का भी स्तवन करते है :—

श्रृङ्गारादि रसालयं त्रिभुवनैर्माल्यैरतुल्यैर्युतं
सर्वाङ्गीण सदङ्गरागसुरभि श्रीमद्वपुर्धूपितम् ।
ताम्बूलारुणपल्लवाधरयुतं रम्यं त्रिपुण्ड्रं दध-
द्भालंनन्दनचन्दनेन जननि ध्यायामिते मङ्गलम् ।३९।

व्याख्या :—

हे जननि ! हे माता त्रिपुरसुन्दरी अहं मैं दुर्वासा मुनि ते तुम्हारे श्रृङ्गारादि रसालय—श्रृङ्गार है मुख्य जिनमें ऐसे नौरसों के आलय को [निवास स्थान को] १. श्रृङ्गार २. हास्य ३. करुण ४. रौद्र ५. वीर ६. भयानक ७. वीभत्स ८. अद्भुत और ९. शान्त ये नौरस कविता में [साहित्य शास्त्र में] माने जाते हैं अतुल्यै जिनकी तुलना बराबरी [समानता] नहीं हो सकती, त्रिभुवनैर्माल्यै तीनों लोकों के पुष्पों से युतं युक्त, पुष्पों से स्त्रियों के देह धार्य - और शिरोधार्य और कचधार्य तीन प्रकार के आभूषण बनाये जाते हैं, मालार [हार] और गजरा इनमें ही आते हैं । सर्वाङ्गीण सदङ्ग राग सुरभि सर्वाङ्गीण शरीर के सब अंगों पर लगाये जाने वाला सत् अच्छे [सुगन्धित] अंगराज विलेपन-एक प्रकार के विलेपन [लेप] से सुरभि सुगन्ध युक्त, अतएव श्री महात्रिपुरसुन्दरी की चतुः षष्टयुपचार पूजा में "४ चन्दनाऽगरु कुंकुम मृगमद कर्पूर कस्तूरी गोरोचनादि दिव्यगन्ध सर्वाङ्गीण विलेपनं कल्पयामि नमः" १४हवां उपचार इस प्रकार का है । अतएव त्रिपुरसुन्दरी मानस पूजा में भगवान् शंकराचार्य ने लिखा है :—

मातर्भालतले तवाति विमले काश्मीरकस्तूरिका
कर्पूरागरुभिः करोमि तिलकं देहेऽङ्ग रागं ततः ।
वक्षोजादिषु यक्ष कर्दमरस सिक्ता च पुष्पद्रवैः
पादौ कुङ्कुम लेपनादि भिरहं सम्पूजयामि क्रमात् ।३१।

आजकल की सभ्यता में अङ्गराज का स्थान क्रीम स्नो और पाउडर ने ले लिया है। धूप से वासित, ताम्बूलारुण पल्लवाधरयुतं ताम्बूल से पान खाने से अरुण लाल (आरक्त) पल्लव अग्रभाग, अधरोष्ठ का अगला भाग, अर्थात ताम्बूल चखने से जिसके अधर का अग्रभाग कुछ लाल है (पल्लव का अर्थ अग्रभाग है) अतएव श्रीमत् शोभाशाली से (तुम्हारे) वपुः स्वरूप को (शरीर को) तथा नन्दन चन्दनेन नन्दन वन में उत्पन्न चन्दन क इन्द्र के उपवन का नाम नन्दन हैं। रम्यं रमणीय (सुन्दर) त्रिपुण्डं तीन आड़ी रेखाओं वाले तिलक से दधत् सुशोभित ते (तुम्हारे) मंगलं मंगलमय-मंगल स्वरूप भालं मस्तक को ध्यायामि अपने मन में (हृदय से) भावना करता हूं अर्थात, तुम्हारे मस्तक का ध्यान करता हूं।

इस पद्य का सरल अर्थ निम्नलिखित प्रकार से होगा:—

हे माता महात्रिपुरसुन्दरि मैं दुर्वासा मुनि तुम्हारे श्रृंगार आदि नवरसों के निवास स्थान और तीनों लोकों में अनुपम पुष्पों से युक्त शरीर के सब अवयवों में विलिप्त अंगराग से सुरभित [सुगन्धित] तथा धूपित धूप से वासित ताम्बूल चर्वण से किञ्चित् रक्तवर्ण अग्रभाग वाले अधर से (नीचे के ओष्ठ से) युक्त शोभाशाली शरीर को (स्वरूप को) तथा इन्द्र के नन्दनभाग के उपवन में उत्पन्न चन्दन के त्रिपुण्ड

से (तिलक से) सुशोभित मंगलमय विशाल भाल की (मस्तक की) अपने मन में भावना करता हूं।

टिप्पणी :

भगवान् शङ्कराचार्य विरचित मानस पूजा स्तोत्र से उधृत पद्य में "वक्षोजादिषु यक्ष कर्दमरसं सित्तवाच पुष्प द्रवैः।"

अर्थात् मैं आपके स्तनादि अङ्गों में यक्ष कर्दमका लेप चढ़ाता हूं।

कर्पूरमगरुश्चैव कस्तूरीचन्दनं तथा।
कंकोलश्च भवेदेभिः पञ्चभिर्यक्षकर्दमः॥

अर्थात कर्पूर अगरु कस्तूरी चन्दन और कङ्कोल से यक्ष कर्दम रस बनाया जाता है।

श्रृंगारादि रसालयं० श्रृंगार आदि नवरसों का घर अर्थात भगवती के मुखमण्डल और शरीर में नवरसों की स्थिति है।

इस विषय को भगवान शंकराचार्य ने अपनी सौन्दर्य लहरी के निम्नलिखित काव्य में दर्शाया है :—

शिवे श्रृङ्गरार्द्रा तदितरजनेकुत्सनपरा
सरोषा गङ्गायां गिरिशि चरितेविस्मयवती।
हरादिभ्यो भीता सरसिरुह सौभाग्यजननी
सखीषु स्मेराते मयिजननि दृष्टिः सकरुणा॥

अर्थात शिव में श्रृंगार, दूसरे में वीभत्स गंगाजी के साथ रौद्र रस गिरिश चरित पर विस्मय अद्‌भुत रस, शिवजी के सर्पों से भयानक रस सरसिरुहों के सौभाग्य पैदा करने में वीर रस सखीषु स्मेरा में हास्य रस जननिमयि दृष्टिः सकरुणा में करुणरस।

बहुत से आचार्य शान्त रस को रसों की गणना में नहीं गिनते हैं अतएव शंकराचार्य ने भी आठ ही रस दर्शाये हैं।

अब पूर्वोक्त प्रकार से परदेवता के ध्यान करने का फल बताते हैं :—

एवं यः स्मरति प्रबुद्ध सुमतिः श्रीमत्स्वरूपं परं,
वृद्धोप्याशु युवा भवत्यनुपमः स्त्रीणामनंगायते ।
सौऽष्टैश्वर्यतिरस्कृताखिलसुरः श्रीजृम्भितात्मालयः,
पृथ्वीपाल किरीटकोटिवलभि पुष्पार्चिताङ्घ्रिर्भवेत् ।४०।

व्याख्या :—

हे भगवति महात्रिपुरसुन्दरी ! प्रबुद्ध सुमतिः जिसकी सद्बुद्धि प्रकर्ष को प्राप्त हो गयी है अर्थात् जिसकी बुद्धि ने तुम्हारी उपासना की श्रेष्ठता को प्राप्त कर लिया है ऐसा जो साधक एवं पीछे वर्णन किये गये प्रकार से परं सर्वोत्कृष्ट श्रीमत् स्वरूपं तुम्हारे स्वरूप को तथा उसके (स्वरूप के) प्रत्येक अवयव (अंग) को यः स्मरति जो उपासक स्मरण करता है अर्थात् तुम्हारे स्वरूप को साङ्गोपाङ्ग युक्त भावना अपने हृदय में [मन में] करता है वह वृद्धः अपि आयु में वृद्ध होने पर भी अर्थात् शिथिलेन्द्रिय होने पर भी आशु शीघ्र स्वल्पकाल में ही अनुपमः उपमारहित अर्थात् अनुपम पुरुषार्थ सम्पन्न युवा पुरुष जैसा युवा जवान जैसा भवति हो जाता है और स्त्रीणां अनङ्गायते यौवन से उद्धत वनितायें (स्त्रियां) तुम्हारे स्वरूप के ध्यान में तत्पर उपासक को कामदेव के समान देखती हैं और उसके साथ रतिक्रीड़ा के लिये उत्सुक रहती है। तथा अपनी धनधान्य को अतुल सम्पत्ति से अपने आलय (निवास स्थान) को जिसने परिपूर्ण कर दिया है, अतएव अष्टैश्वर्यतिरस्कृताऽखिलसुरः अपने अष्टविध ऐश्वर्य

अणिमाद्यष्टकैश्वर्य और गजाश्वादि सम्पत्ति से सम्पन्न देवताओं को भी तिरस्कृत (लज्जित) करने वाला बन जाता है, इतना ही नहीं अपितु पृथ्वीपाल किरीट कोटिबल भी पुष्पार्चिताङ्घ्रि, पृथ्वी का पालन करने वाले चक्रवर्ती राजाओं के सुवर्ण मुकुटों के शिखर पर प्रजा की ओर से चढ़ाये गये पुष्पों से अथवा शोभा के लिये शिर के सुवर्ण किरीटों [मुकुटों] पर सजाये गये अनेक प्रकार के पुष्पों से तुम्हारे साधक के चरण अर्चित [पूजित] किये जाते हैं। अर्थात् बड़े बड़े राजेमहाराजे [आजकल के मुख्य मन्त्री, प्रधान मन्त्री और राष्ट्रपति] भी तुम्हारे भक्त प्रवर के चरण युगल में प्रणाम करते हैं। दुर्वासा मुनि में इन चालीस पद्यों की रचना शार्दूल विक्रीडित छन्दों में की है।

संक्षेप में इस पद्य का अर्थ निम्नलिखित रूप में होगा।

हे भगवती महात्रिपुर सुन्दरि तुम्हारी सतत उपासना करने से जिस साधक में सुमति [सद् बुद्धि] उत्पन्न हो गई है अतएव जो [साधक] अङ्ग प्रत्यंग सहित तुम्हारे स्वरूप का ध्यान करता है वह वृद्ध होने पर भी अपनी उपासना के प्रभाव से युवा जैसा प्रतीत होता है और यौवनोद्धत स्त्रियां उसको अनंग [कामदेव] के समान देखती हैं। तथा तुम्हारी उपासना की कृपा से उसका निवास स्थान चल और अचल सम्पत्ति द्वारा परिपूर्ण हो गया है अतएव वह अपने अष्टविध ऐश्वर्य से देवताओं को भी लज्जित करता है। इतना ही नहीं अपितु तुम्हारे स्वरूप के ध्यान प्रभाव से तुम्हारे उपासक के

चरणों की बड़े बड़े राजे-महाराजे अपने अपने स्वर्ण मुकुटों के ऊपर स्थापित पुष्पों द्वारा पूजा करते हैं अर्थात् अपने शिर झुकाते हैं।

समय की महिमा है, इस समय के मन्त्री प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति ही पृथ्वी के पालक हैं वे ही महाराजा और महाराजाधिराज हैं।

टिप्पणी :–

अष्टैश्वर्य—आठ प्रकार के ऐश्वर्य अष्ट सिद्धियां निम्नलिखित हैं।

अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा ।
प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चाष्टसिद्धयः ।।

श्री महात्रिपुरसुन्दरी के उपासना के विषय में ब्रह्माण्ड पुराण में लिखा है .—

'येनाऽन्य देवता नाम कीर्तितं जन्म कोटिषु,
तस्यैव भवति श्रद्धा श्री देवी नाम कीर्तने" !
"चरमे जन्मनि तथा श्रीविद्योपासकोभवेत् ।।"
तथाच–"यस्यनो पश्चिम जन्म यदिवाशङ्करः स्वयम्
तेनैव लभ्यते विद्या श्रीमत्पञ्चदशाक्षरी"

इति मन्त्रेषु वहुधा विद्याया महिमोच्यते ।
मोक्षैकहेतु विद्या तु श्रीविद्यैव न संशयः ।।

अर्थात जिस साधक ने अनेक जन्मों में श्री शिव और विष्णु भगवान आदि देवों की उपासना की है। उस साधक

को ही श्री महात्रिपुरसुन्दरी की उपासना में श्रद्धा होती है। तथा वह अपने अन्तिम जन्म में श्री विद्या का उपासक बन जाता है।

यद्यपि अन्य मन्त्रों में दस महाविद्याओं की महिमा का वर्णन किया गया है अर्थात् प्रत्येक महाविद्या काली तारा आदि सब ही अपने अपने भक्तों को वरदान देने में समर्थ हैं किन्तु मोक्ष देने की अर्थात् इस संसार के आवागमन से मुक्ति देने वाली केवल श्रीविद्या महात्रिपुरसुन्दरी ही एकमात्र विद्या है इसमें तनिक संशय नहीं है। दस महाविद्याओं में षोडशी को महात्रिपुरसुन्दरी कहते हैं।

: ४१ :

भगवती के स्वरूप वर्णनानन्तर उसके आयुधों का वर्णन और उसके चिन्तन का फल बतलाते हैं :—

अथतवधनुःपुण्ड्रेक्षुकृत् प्रसिद्धमतिद्युति
त्रिभुवन वधूमुद्यज्ज्योत्स्नाकलानिधि मण्डलम् ।
सकल जननि स्मारंस्मारं गतः स्मरतां नर
स्त्रिभुवन वधूमोहाम्भोधेः प्रपूर्ण विधुर्भवेत् ॥४१॥

व्याख्या : –

हे सकल जननि ! हे सम्पूर्ण विश्व की माता महात्रिपुर-सुन्दरी तब तुम्हारे अतिद्युति अत्यन्त शोभा सम्पन्न अथवा अत्यन्त दीप्तमान् 'भानूछविद्युति दीप्तयः" तथा "शोभा कान्तिद्युति श्छविः" अमरनें द्युति के दोनों अर्थ लिखे हैं किन्तु टीकाकार नें अत्यन्त कीर्तिमत् लिखा है । सम्भव है द्युति का अर्थ कीर्ति भी हो । पुण्ड्रेक्षुकृत् पुण्ड्र इक्षु का एक भेद है जिसे 'पोंडा कहते हैं इक्षु (गन्ने) की अपेक्षा पुण्ड्र (पोंडा) कुछ स्थूल होता है । अतः पुण्ड्रेक्षु से बना हुआ धनुः धनुष त्रिभुवन वधू प्रति-भुवन त्रय की स्त्रियों के प्रति उद्यत्कला-निधि मण्डलम् उद्यत् सर्वत्र फैलनें वाली ज्योत्स्ना से (चन्द्रप्रभा से) युक्त चन्द्रमण्डल चन्द्र विम्ब भवति बन जाता है, इति प्रसिद्धं यह बात प्रसिद्ध है । अर्थात् भगवती का पुण्ड्रेक्षु धनुः पूर्ण चन्द्र मण्डल के समान त्रिलोकी की प्रोषित भर्तृका

स्त्रियों के लिये विरह का उत्पादक विरह जन्य दु:ख का देने वाला हो जाता है। धनुष वाण चढ़ाने पर खींचनें से गोलाकार हो जाता है। अतः चन्द्रमा के मण्डल के समान कहा गया है। गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने भी चन्द्रमा के लिये लिखा है "घटै बढ़ै विरहिन बु:ख दायी" तुम्हारे स्वरूप के साथ तुम्हारे निचले वाम कर में (हाथ में धनुष का बार-बार स्मरण करने से [ध्यान करने से] नरः तुम्हारा उपासक स्मरतां प्राप्तः कामदेव के समान सौन्दर्य को प्राप्त होकर "स्मारं स्मारं स्मरतांगतः" यह रचना ध्यान देने योग्य है, स्मरण करते करते स्मरण ही हो गया । त्रिभुवनवधू मोहाम्भोधेः तीनों भुवनों की सुर, नर और नागलोक की स्त्रियों के मोहरूप अम्भोधि के समुद्र के बढ़ाने में प्रपूर्णविधुः पूर्णमासी का पूणचन्द्र ही हो जाता है।

अम्भांसिधीयन्ते यस्मिन् सोम्भोधिः, जिसमें जल एकत्रित होता रहता है। समुद्र का नाम है।

जिस प्रकार चन्द्रमा के उदय होने पर समुद्र में ज्वार भाटा आता है एवमेव तुम्हारे स्वरूप के साथ धनुष की भावना करने से साधक कंदर्प तुल्य हो जाता है जिसे देखने में स्त्रियों का मोहसागर अधिक बढ़ जाता है अर्थात् अत्यधिक कामातुर हो जाती हैं।

संक्षेप में इस पद्य का सरल अर्थ निम्न प्रकार है :—

हे सकल जननि ! हे सर्व जगत् की माता ! तुम्हारा अत्यन्त शोभा सम्पन्न पुण्ड्रेक्षुका (गन्ने का) धनुष जो कि तुम्हारे निचले बायें हाथ में है वह त्रिलोकी की वनिताओं के

लिये ज्योत्स्ना से परिपूर्ण चन्द्रमण्डल बन जाता है। यह अत्यन्त प्रसिद्ध बात है तथा तुम्हारा साधक अनेक बार (बार बार) तुम्हारे धनुष का स्मरण कर स्मरत्व को प्राप्त होकर अर्थात् स्मर (कामदेव) बनकर कामदेव के समान सौन्दर्य प्राप्त कर तीनों लोकों की स्त्रियों के मोह सागर को पढ़ने के लिये पूर्णमासी का पूर्ण चन्द्रमा बन जाता है।

टिप्पणी :—

महात्रिपुरसुन्दरी के आयुधों के बारे में दक्षिणामूर्ति संहिता में निम्नलिखित पद्य हैं।

दक्षिणाधः करे वाणान् वामाधस्तु शरासनम् ।
वामोर्ध्वे पाशमारक्तं दक्षोर्ध्वेतु सृणिपरम् ।। इति

अर्थात् भगवती के निचले दक्षिण कर में बाण और बायें (निचले) हाथ में धनुष है तथा ऊपर के बायें हाथ में पाश और दक्षिण कर में [ऊपर के] सृणि अङ्कुश है।

सकल जननि सम्पूर्ण विश्व की माता, तथा सकल पद से "अनेक कोटि ब्रह्माण्ड भी लिये जा सकते हैं। अतएव ललिता सहस्त्र नामों में" अनेक कोटि ब्रह्माण्ड जननी" यह एक नाम भी आया है। अनेकाः "अनन्ताः कोटियों ये ब्रह्माण्डस्तेषां जननी" करोड़ों ब्रह्माण्डों की जननी इसकी विशेष व्याख्या भी श्री ललिता सहस्त्र नाम की टीका में देख सकते हैं।

"पञ्चस्तवी" नाम के देवी स्तोत्र पञ्चक में "सकल जननी स्तोत्र" नाम की ३८ अड़तीस पद्यों की शिखरिणी

छन्द में एक स्तुति है जो बड़ी उत्तम और रहस्यपूर्ण है। उसका अन्तिम पद्य निम्नलिखित है :—

भुवि पयसि कृशानौ मारुते खे शशांके
सवितरि यजमानेऽप्यष्टधा शक्तिरेका ।
वहसि कुचभराभ्यां याऽवनम्रापि विश्वे
सकल जननिः सात्वं पाहि मामित्यवाच्यम् ।३९।

भावनोपनिषद् में—इक्षु धनुष में मन की भावना की गई है "मन इक्षु धनुः" अर्थात् उपासक का मन ही भगवती का इक्षु धनु है—गन्ने का धनुष ।

कविवर नीलकण्ठ दीक्षित ने इस पर बड़ी सुन्दर कविता की है :—

यत्तद्धनुर्जुन मनोमय मैक्षवंते
तस्यास्तु देवि हृदयं मम मूक्तदेशः ।
पापाधि गेहण विधौ चरणाग्जलेन
सम्भाव्यतेकिल समाक्रमणं कदाचित् ।।

कवि भगवती से प्रार्थना करता है कि हे भगवती तुम्हारा गन्ने का धनुष जो मनुष्य के मन से बना है उसका मूल स्थान मेरे हृदय में हो अर्थात् उसकी जड़ मेरे हृदय में हो क्योंकि कभी न कभी जब तुम उस पर ज्या चढ़ाओगी तो उसको अपने चरण से अवश्यमेव उसे आक्रान्त करोगी अर्थात् उसको अपने पैर से दबाकर झुकाओगी। कवि का आशय अपने मन को भगवती के चरणों से झुकाने का है ।

धनुष के वर्णनान्तर अब श्री भगवती के वस्त्रों का माहात्म्य दर्शाते हैं :—

प्रसूनशरपञ्चकप्रकटजृम्भणागुम्फितं
त्रिलोकमवलोकयत्यमलचेतसाचिन्तयन् ।
अशेष रमणी जन स्मर विजृम्भणे यः सदा
पटुर्भवति ते शिवे त्रिजगदङ्गनाक्षोभणे ।।४२।।

व्याख्या :—

हे शिवे हे मङ्गल रूपिणि; "शिवेति मङ्गलं नाम" अर्थात् हे कल्याण रूपे यः ते साधक जो तुम्हारा उपासक त्रिलोक तीनों लोकों को प्रसूनशरपञ्चप्रकारजृम्भणगुम्फितं—प्रसूनशर फूलों के बाण, यहाँ पर फूलों से चार प्रकार के कमल पुष्पों से तात्पर्य है, अतएव तन्त्रराज नाम के ग्रन्थ में लिखा है :—

कमलं कैरवं रक्त कह्लारेन्दीवरे तथा ।
सहकारमिति प्रोक्तं पुष्पपञ्चकमीश्वरि ।।

अर्थात् कमल सूर्य विकासी शुभ्र तथा पीत कमल, कैरव चन्द्र विकासी कुमुद (सफेद कमल) रक्त कहलार लाल कमल इन्दीवर नील कमल और सहकार आम्रवृक्ष आम्र वृक्ष से यहां पर आम्रमञ्जरियों से तात्पर्य है । ये पुष्प पञ्चक हैं ।

भगवती के पांचबाण इन्हीं पांच प्रकार के फूलों के हैं, उनका जो प्रकटतया स्फुटतया जृम्भण खिलना (विकसित होना) उससे आगुम्फित अमल चेतसा निर्मल चित्त होकर अर्थात् शुद्धान्तःकरण से चिन्तयन् विचार करता हुआ अवलोकयति अन्तर्दृष्टि से देखता है, स वह तेरा साधक अशेष रमणीजन स्मर विजृम्भण-सम्पूर्ण स्त्रीजन के विकसित करने में हृदय में काम शक्ति पैदा करने में अर्थात् कामवशीभूत करने में (कामातुर बनाने में) तथा त्रिजगदङ्गना क्षोभणे त्रिलोकी की अङ्ग-

नाओं के मन में क्षोभण पैंदा करने में अर्थात् उनको अपने अधीन करने में पटु: भवति समर्थ होता है। भगवती के पुण्ड्रेक्षु धनुष का नाम 'सर्व संमोहन है" जिसको देखने से सब मुग्ध हो जाते हैं तथा वाणों का नाम "सर्व जृम्भण" है।

इस पद्य का संक्षिप्तार्थ निम्नलिखित होगा :—

हे शिवे हे कल्याणरूपे ! जो तुम्हारा साधक पांच प्रकार के पुष्पों के पाँच वाणों के विकास से अर्थात् कमल कैरव, कल्हार, नील कमल तथा आम्रमञ्जरी के पांच पुष्प वाणों के विकास से गुम्फित त्रिलोकी को शुद्धान्तःकरण से विचारपूर्वक देखता है वह (तुम्हारा साधक) सकल स्त्रीजन के मन में काम शक्ति के पैदा करने के तथा स्वर्ग मर्त्य और पाताल लोक की अङ्गनाओ के क्षोभण में वशीकरण में समर्थ होता हैं।

आयुध पूजा में—सर्व सम्मोहनाभ्यां कामेश्वरी कामेश्वर धनुर्भ्यां नम; शक्ति श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

सर्वजृम्भणेभ्य: कामेश्वरी कामेश्वर वाणेभ्योनम: वाण शक्ति श्री-पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

सर्व स्तम्भनाभ्यां कामेश्वरी कामेश्वराङ्कुशाभ्यां नम: अंकुशशक्ति श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामिनम:।

नोट —यहां पर आयुधों के बीजाक्षर नहीं लगाये गये हैं।

पूजापद्धति कार—"सर्व जृम्भणेभ्यः कामेश्वर कामेश्वरी वाणेभ्यो नमः। ऐसालिखते हैं किन्तु यहां पर कामेश्वर पदयो: "पुमान्स्त्रियां" इति एक शेष नियम अवश्यमेव लगेगा। अत: सर्वजृम्भनेभ्यः कामेश्वरी वाणेभ्यो नमः। ऐसा प्रयोग होगा। वस्तु तस्तु वाण शक्ति पादुकां पूजयामि इत्यादि अन्त्याकारका एव।

इस विषय पर "नित्याषोडशि कार्णव" की सेतु बन्ध नाम की व्याख्या में विशेष शास्त्रार्थ दर्शनीय है।

अब पाश चिन्तन के प्रभाव पर प्रकाश डालते हैं :—

पाशं प्रशरित महासुमति प्रकाशो
योवा तव त्रिपुर सुन्दरी सुन्दरीणाम् ।
आकर्षणेऽ खिलवशीकरणे प्रवीणं
चित्ते दधाति स जगत्त्रयवश्यकृत् स्यात् ।।४३।।

व्याख्या :—

हे त्रिपुर सुन्दरि (त्रिपुरस्य पर शिवस्य सुन्दरि भार्या) अर्थात् पर शिव की स्त्री। त्रिपुर शब्द का निर्वचन इस प्रकार है—त्रीणि पुराणि ब्रह्माविष्णुशिवशरीराणि यस्मिन् सः त्रिपुरः परशिवः। अर्थात् ब्रह्मा विष्णु और शिव के शरीर जिसमें हैं वह परशिव त्रिपुर है यहाँ पर पुर का अर्थ शरीर है। यह बात कालिका पुराण में लिखी है। सुन्दरीणां स्त्रियों के "स्त्रियोषिदवला सुन्दरी रमणी रामा" अमरकोश। आकर्षणे अपनी ओर खींचने में अर्थात् अपने अधीन करने में तथा अखिलवशीकरणे सबको अपने वशीभूत करने में प्रवीणं निपुण 'प्रवीणो निपुणाभिज्ञविज्ञनिष्णातशिक्षिताः' अमरकोश। तब तुम्हारे पाशं पाशनाम आयुध को चित्ते दधाति चित्त में धारण करता है। 'अर्थात् अपने हृदय में उसका ध्यान करता है (भावना करता है) स वह तुम्हारा साधक प्रपूरित महासुमतिप्रकाशः जिसके हृदय में भीतर और बाहर परिपूर्ण ज्ञान का प्रकाश हो गया अथवा अपने ज्ञान के प्रकाश से जगत् को प्रकाशित करने वाला जगत्त्रयवश्यकृत् तीनों लोकों को स्वर्ग मर्त्य और पाताल लोक को अपने वशवर्ती बनाने वाला स्यात् होवे अर्थात् हो जाता है।

त्रिपुर शब्द के विषय में कालिका पुराण कहता है :—

प्रधानेच्छावशाच्छम्भोः शरीरमभवत्त्रिधा ।
तत्रोर्ध्वभागः सञ्जातः पञ्चवक्त्रश्चतुर्भुजः ।।
पद्मकेशरगौराङ्गः कायो ब्राह्मो महेश्वरे ।
तन्मध्यभागो नीलाङ्गः एकवक्त्रश्चतुर्भुजः ।।
शङ्खचक्रगदापद्मपाणिः कायः स वैष्णवः ।
अभवत्तदंशो भागे पञ्चवक्त्रश्चतुर्भुजः ।।
स्फटिकाभ्रमणः शुक्लः स कायश्चान्द्रशेखरः ।
एवम् त्रिभिः पुरैर्योग्यत् त्रिपुरः परमः शिवः ।।इति।।

अर्थात् परम शिव की प्रधान इच्छा शक्ति से शरीर के तीन भाग हो गये, ऊपर के भाग से चतुर्भुज ब्रह्मा, मध्य से श्यामवर्ण चतुर्भुज विष्णु और अधो भाग से पंचमुख चतुर्भुज और शुभ्रवर्ण शिव का शरीर उत्पन्न हुआ । इस प्रकार तीन पुरों के शरीरों के योग से परम शिव त्रिपुर कहलाते हैं ।

इस पद्य का सरल अर्थ नीचे लिखा जाता है :—

हे त्रिपुरसुन्दरी जो साधक स्त्रियों के आकर्षण में (आपकी ओर खींचने में) तथा त्रिलोकी के अन्तर्गत सबके वशीकरण में अपने अधीन करने में) अत्यन्त निपुण तुम्हारे पास नाम वाले आयुध का अपने हृदय में निरन्तर ध्यान करता है वह (साधक) परिपूर्ण ज्ञान से स्वयं प्रकाशित होकर स्वर्ग मर्त्य और पाताल इन तीनों लोकों को (अर्थात् इनमें निवास करने वालों को) अपने वशीभूत करने वाला हो जाता है । इस पद्य में वसन्ततिलका छन्द है ।

उसका लक्षण "उक्ता वसन्ततिलकातभजा जगौगः" इस प्रकार है ।

पाशवर्णन अनन्तर अंकुश के प्रभाव को दिखाते हैं :—

**यः स्वान्ते कलयति कोविदस्त्रिलोकस्तम्भरम्भण
चणमत्युदारवीर्यम् ।**

**मातस्ते विजयमहाकुंशं सयोषानु
देवान् स्तम्भयति च भूभुजोऽन्य सैन्यम् ।**

व्याख्या :—

हे मातः हे माता त्रिपुरसुन्दरी यः जो कोविदः विद्वान् साधक ते तुम्हारे अत्युदारवीर्यम् अत्यन्त प्रौढ़ पराक्रमी विजय महाकुंशविजयप्रद शक्तिशाली अंकुश को भगवती के ऊपर के दाहिने हाथ के आयुध का नाम है। यह सुवर्ण का है। त्रिलोक स्तम्भारम्भ चणं स्वर्ग मर्त्य और पाताल लोकों में निवास करने वालों के स्तम्भन के आरम्भ करने में दक्ष (चतुर) आरम्भण चणः "तेन वित्त श्चञ्जुप्चणपौ" आरम्भ करने में विख्यात, विख्यातार्थ में चणप् प्रत्यय स्वान्ते अपने हृदय में ध्यान करता है –

(उसकी भावना करता है) स वह तुम्हारा साधक सयोषान् अपनी योषाओं के साथ (अपनी देवियों के साथ) देवान् स्वर्गलोग में क्रीड़ा करने वाले देवताओं को, भूभुजः पृथ्वीपालों को अथवा पृथ्वी पर भोग करने वाले राजाओं तथा अन्य सैन्यशत्रुओं की सेना को (का) स्तम्भयति स्तम्भ कर देता है। जो यहाँ पर जैसी स्थिति में है उसी स्थिति में उसको वहाँ पर रोक देने को स्तम्भन करना कहते हैं। अतएव उसने शत्रु के मुख का स्तम्भन कर दिया, ऐसा प्रयोग

होता है। वाक् स्तम्भन करा, अतएव लिखा है :—विद्यासु कुरुतेवादं यो विद्वान् नाम जापिना।

तस्य वाक्स्तम्भनं सद्यः करोति नकुलीश्वरी। अर्थात जो विद्वान भगवती के साधक के साथ विवाद करता है नकुलीश्वरी (भगवती की एक शक्ति) उसकी वाणी का स्तम्भन कर देती है।

देव्या पाशेन संवद्धा माकृष्टामंकुशेनच।
आयाति स्व समीपं सा यद्यप्यन्तं पुरंगता ।।

अर्थात जो साधक भगवती के पाश से वद्ध तथा भगवती के अंकुश से आकृष्ट (खिची हुई) स्वाभीष्ट वनिता का रात में ध्यान कर सहस्रनाम का पाठ करता है, उसके पास वह यदि अन्तःपुर में भी हो तो वहाँ से भी आ जाती है।

केवल पाश और अंकुश की महिमा दिखाने के लिये उपरितन पद्य लिखे गये हैं।

इस पद्य का संक्षिप्त और सरल अर्थ निम्नलिखित है :—

हे माता त्रिपुरसुन्दरी जो विद्वान् साधक स्वर्ग मर्त्य और पाताल तीनों लोकों के निवासियों के स्तम्भन करने में अत्यन्त दक्ष (चतुर) अत्यन्त पराक्रमी तुम्हारे विजय प्रद शक्तिशाली अंकुश का अपने हृदय में ध्यान करता है वह (तुम्हारा साधक) स्वर्गलोक मे स्वकीय देवियों के साथ रमण करने वाले देबताओं का राजाओं का, और शत्रु सेना का भी स्तम्भन कर देता है।

टिप्पणी :–

भगवती के चार हाथों में चार आयुध हैं अतएव ध्यान में लिखा है :—

इक्षुकोदण्डपुष्पेषु पाशांकुशचतुर्भुजाम् ।
प्रवालवल्लीविलसद् वाहुवल्ली चतुष्टयी ॥

भगवती के कमल कैरव आदि पांच पुष्पों के वाण हैं (पाँच पुष्पों का पहिले उल्लेख किया गया है) धनुष पुण्ड्रेक्षु का है और उस पर डोरी (ज्या) भ्रमरमयी है। पाश प्रबालमयी वल्लियों से (लताओं से) बना है। और अंकुश चन्द्रमा की रेखा के समान स्वच्छ है। वाणों के नाम उनके गुणों के अनुरूप भी रखे गये हैं :—

यथा—

क्षोभणो द्रावणो देवि तथाऽऽकर्षण संज्ञकः ।
वश्योन्मादौ क्रमेणैव नामानि परमेश्वरि ॥

अर्थात् क्षोभण चित्त में क्षोभ उत्पन्न करने वाला द्रावण द्रवित करने वाला, आकर्षण अपनी ओर खींचना, वश्य वशीभूत करने वाला उन्माद उन्मादकारी। संहिता में लिखा है :—

कमलाकार सम्पन्नाः पञ्चवाणमनोहराः ।
मधुलिड़्गुणसंपन्नमैक्षवं हिशरासनम् ॥
प्रवालवल्लरीघटितः पाशः क्षौमगुणान्वितः ।
चन्द्ररेखासमः स्वच्छः शृणिराकर्षणक्षमः ॥
दक्षिणाधः करे वाणान् वामाधस्तु शरासनम् ।
वामोर्ध्वे पाशमारक्तं दक्षोर्ध्वेतु शृणिपरम् ॥

(नित्याषोडशिकार्णव)

क्षौम गुणान्वितः रेशमी डोरी से युक्त। शेष का अर्थ (सारांश) ऊपर लिखा गया है आयुधों के विषय में पहिले लिख दिया गया है।

अब एक साथ चतुरायुधों के ध्यान का विशेष फल दर्शाते हैं —

चापध्यानवशाद्भवोद्भवमहामोहस्य व्युज्जृम्भणम्
प्रख्यातं प्रसवेषुचिन्तनवशात्तत्तच्छरव्यं सुधीः ।
पाशध्यान वशात्समस्तजगतां मृत्योर्वशत्व महा-
दुर्गस्तम्भमहाङ्कुशस्य मननान्माया ममेयां तरेत् ।।४५।।

व्याख्या :—

हे माता महात्रिपुरसुन्दरी सुधीः सद्‌बुद्धिशाली विद्वान साधक तुम्हारे चाप (धनुष) के सतत् ध्यान करने से भवोद्भव महामोहस्य संसार में लिप्त रहने से उत्पन्न महामोह के प्रसार का (व्युज्जृम्भणका) विनाश करता है, यह बात संसार में विख्यात है तथा तुम्हारे पुष्पेषु चिन्तनवशात् पांच पुष्प वाणों की भावना से यहां जिस जिस वस्तु की (पदार्थ की) चिन्ता करता है तत् तत् पदार्थ को ही लक्ष्य [निशाना] बना देता है, निशाना ठीक बैठने से सफ़लता मिल जाती है। च पुनः पाशध्यावशात् तुम्हारे पाश के निरन्तर ध्यान से समस्त जगत् की मृत्यु को (काल को) अपने वश में कर लेता है, तथा महादुर्ग स्तम्भ महाङकुशस्य महादुर्ग के राज्य के एक मुख्य अङ्ग बड़े भारी किले के स्तम्भनकारी महाङकुश के मनन से चित्त में सन्तत् ध्यान करने से अमेयां [मातुमशक्यां] जिसका किसी से मान नहीं किया जा सकता ऐसी मायां माया को तरेत् पार कर देता है अर्थात् मायाजाल को उच्छिन्न कर देता है।

राज्य के स्वामी अमात्य सुहृत् कोष, राष्ट्र, दुर्ग सबसे मुख्य है अतएव दुर्ग के पूर्व महत् शब्द लगाया है। माया के विषय में गीता में लिखा है :-

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ।।७ अ. १४।।

माया के विषय में और भी कहा गया है :—

अपूर्वेयं हरेर्माया त्रिगुणा रज्जुरूपिणी ।
माया मुक्तो न चलति बद्धो धावति धावति ।।इति।।

अर्थात् तीन बल वाली यह रस्सी [रज्जु] रूपी भगवान की माया अपूर्व है अद्भुत है इस माया रूपी रस्सी से मुक्त तो चल नहीं सकता और जो इससे बंधा है वह संसार में दौड़ लगा रहा है, अतएव दूसरे स्थान पर कहा गया है :-

शम्भोरघटित घटना पटीयसी माया ।।इति।।

अर्थात् शिव जी की माया जो घटना दुर्घट होती है उसको भी घटा देती है ।

इस पद्य का सरल अर्थ नीचे लिखा जाता है—

हे जननि विद्वान् साधक तुम्हारे चाप के (धनुष के) संतत ध्यान करने से संसार में रहने के कारण उत्पन्न महा मोह के प्रसार को नहीं होने देता है यह बात प्रसिद्ध है तथा तुम्हारे पांच पुष्प वाणों की भावना करने से जिस पदार्थ की चिन्ता करता है उसी को अपना लक्ष्य बना लेता है । पुनः तुम्हारे पाश के बराबर ध्यान करने से सम्पूर्ण जगत् में मृत्यु के कारण काल को भी अपने वशीभूत कर लेता है और बड़े-बड़े दुर्ग को स्तम्भन करने वाले तुम्हारे महाङ्कुश के सर्वदा मनन करने से अविरल चिन्तन से संसार में अनुमान करने के अयोग्य [अमेय] माया को—पार कर लेता है अर्थात् वह मायाजाल को छिन्न भिन्न कर देता है । माया के बन्धन से मुक्त हो जाता है ।

टिप्पणी :—

श्री ललिता सहस्त्र नामों में निम्नलिखित चार नाम आयुधों के विषय में आये हैं—

रागस्वरूपपाशाढ्य क्रोधाकाराङ्कुशोज्ज्वला ।
मनोरूपेक्षुकोदण्डा पञ्चतन्मात्र सायका ।।

अर्थात् राग अनुराग, चित्त की विशेष वृत्ति अथवा इच्छा राग एवं वासनामयं रूपं यस्या–राग ही जिसका वासनामय स्वरूप है ऐसे पाश से युक्त, अर्थात् जिसके ऊपर के बायें हाथ में पाश है ।

क्रोधोद्वेषाख्याचित्तवृत्तिः (गुस्सा) द्वेषानोभयात्मकेन अंकुशेन उज्ज्वला, अर्थात् द्वेष और ज्ञानरूपी अंकुश से उज्ज्वल । दाहिने ऊपर के हाथ में अंकुश है । चतु:शती शास्त्र में लिखा भी है :—

पाशाङ्कुशौ तदीयौ तु रागद्वेषात्मकौ स्मृतौ । इति

'तन्त्रराज' नाम के ग्रन्थ में भी वासना पटल में लिखा है :—

मनोभवेदिक्षुधनुः पाशोराग उदीरितः ।
द्वेषः स्यादङ्कुशः पञ्चतन्मात्राः पुष्पसायकाः ::

मनोरूपेक्षु को दण्डा–संकल्प विकल्पनात्मक क्रियारूप मन जिसका धनुष है । यह धनुष बायें नीचेके हाथ में है । उत्तर चतु शतीशास्त्र में लिखा है :—

इच्छाशक्ति मयं पाशंअंकुशं ज्ञान रूपिणम् !
क्रियाशक्ति मये, वाणधनुषी दधदुज्ज्वलम् ।।

पञ्चभूतों की पञ्च तन्मात्रा—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध पांचवाण नीचे के दाहिने हाथ में है, वामकेश्वर तन्त्र में भी लिखा है—

शब्द स्पर्शादयो वाणा मनस्तस्या भवद्धनुः । इति

अर्थात् मन धनुष हैं, और शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध वाण हैं। कादि मत कहता है कि वाण स्थूल, सूक्ष्म और पर इन भेदों से तीन प्रकार के हैं। पुष्पमय वाण स्थूल है, सूक्ष्मवाण मन्त्रात्मक है और पर वासनामय है।

तथाच-वाणास्तु त्रिविधाः प्रोक्ताः स्थूलसूक्ष्मपरत्वतः।
स्थूला पुष्पमयाः सूक्ष्मा मन्त्रात्मानः समीरिताः।
पराश्च वासना यान्तु प्रोक्ताः स्थूलान् श्रुणुप्रिये

स्थूलवाण—

कमलं कैरवं रक्तं कल्हारेन्दीवरे तथा।
सहकारकमित्युक्तं पुष्पपञ्चकमीश्वरि।

(अर्थ पहले लिख दिया गया है)

कालिका पुराण में इनके नाम नीचे लिखे हैं :—

हर्षणं रोजनाख्यञ्च मोहनं शोषणं तथा।
मारणञ्चेत्यमी वाणा मुनीनामपि मोहदाः॥

अर्थात हर्षणं रोचन मोहन शोषण और मारण ये वाण मुनियों को भी मोह में फंसा देते हैं।

ज्ञानार्णवतन्त्र में इनके नाम दूसरे ढङ्ग से लिखे हैं :—

मदनोन्मादनौ पञ्च तथा मोहन दीपनौ।
शोषणश्चेति कथिता वाणाः पंच पुरोदिताः॥

अर्थात् मदन, उन्मादन, मोहन, दीपन तथा शोषण ये पांच प्रकार के वाण हैं।

भावनोपनिषद् में महात्रिपुरसुन्दरी के आयुधों की भावना निम्न रीति से लिखी है :—

शब्दादि तन्मात्राः पंच पुष्प वाणाः ॥२१॥ मन इक्षु धनुः ॥२२॥ रागः पाशः ॥२३॥ द्वेषोङ्कुशः ॥२४॥

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध पञ्चतन्मात्र कहे जाते हैं किन्तु ये पहले (प्रारम्भ में तो अच्छे लगते हैं परन्तु अन्त में परुष हैं) अतएव ये वाणों से भिन्न नहीं हैं।

अविकृत (विकाररहित मन पुण्ड्रेक्षु चाप रूप हैं) यतः विषय परामर्श रूप इन्द्रियों को उनके विषयों के प्रति प्रेरणा करता है।

रागः प्रीति, छत्तीस तत्वों के अन्तर्गत एक विशेष तत्व है, सामान्य इच्छा नहीं। वन्धन की समानता से पाश से भिन्न नहीं है दोनों बांधने का काम करते हैं।

द्वेषः = क्रोधः तस्य द्वेषान्निवारकत्वादङ्कुशता। आयुधों के विषय में संहिता नाम के ग्रन्थ में भी लिखा है :—

कमलाकारसम्पन्ना पंच वाणा मनोहराः।
मधुलिड् गुणसम्पन्नमैक्षवंहिशरासनम् ॥
प्रवालवल्ली घटितः पाशः क्षौमगुणान्वितः।
चन्द्ररेखा समः स्वच्छः सृणिराकर्षण क्षमः ॥
दक्षिणाधः करे वाणान् वामाधस्तु शरासनम्।
वामोर्ध्वे पाशमारक्तं दक्षोर्ध्वंतु सृणि परम् ॥

अर्थात् भगवती के निचले दाहिने हाथ में पाँच मनोहर वाण कमल के आकार के हैं तथा नीचे के बायें हाथ में भ्रमरों की प्रत्यञ्चा से सम्पन्न इक्षुका धनुष है। ऊपर के बायें हाथ में रेशमी रज्जु से युक्त प्रवाल घटित पाश शोभा दे रहा है, और ऊपर के दक्ष कर में आकर्षण करने में समर्थ चन्द्र रेखा के समान कान्तिमान अंकुश है।

: ४६ :

बाईसवें पद्य में "त्वद्रूपस्य गुरोर्मुखारविन्दविवराद्दीक्षां सम्प्राप्य मुक्ताभवेत्" ऐसा लिखा है, चौबीसवें पद्य में 'त्वां गुरुमभ्युपेत्य त्वामेव कलयेत्तदामुच्यते' ऐसा कहा है, तो पर देवता के तादात्म्य सिद्धि कर मातृकादि न्यास जाल के विषय में कुछ भी नहीं लिखा अतः सिंहाव-लोकन न्याय से शङ्कित होकर महामुनि दुर्वासा स्रग्धराछन्द में कहते हैं :—

न्यासं कृत्वा गणेशग्रहभगण महा योगिनी राशिपीठैः
पञ्चाशन्मातृकार्णैः सहित बहुकलै रष्टवाग्देवताभिः ।
सश्री कण्ठादि युग्मैर्निजविमलतनौ केशवाद्यैश्च तत्वैः
षट् त्रिंशद्भिर्धराद्यैर्भगवतिभवतीयः स्मरेत्स त्वमेव।४६।

व्याख्या :—

हे भगवति ! सर्वदेव पूज्य (जो सब देवताओं की पूजनीया है) शक्ति रहस्य में लिखा है :—"पूज्यते यः सुरैः सर्वैः तांश्चैव भजते यतः । सेवायां भजति र्धातु भगवत्येव सा स्मृता" इति । अथवा हे षड्गुणैश्वर्य शालिनि (छः प्रकार के ऐश्वर्यों से युक्त) कालिका पुराण में लिखा है :—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञानविज्ञानयोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ।।इति।।

अर्थात् सब प्रकार का ऐश्वर्य धर्म यश (कीर्ति) श्रीलक्ष्मी अथवा शोभा ज्ञान और विज्ञान ये छः वस्तुयें जिसमें होती हैं वह भगवती अथवा भगवान हैं । यः जो साधक निजविमलतनौ अपने पाप रहित (निष्पाप) तनौ शरीर में (निर्मल शरीर में)

विमल तनौ इस पद से त्रिविध प्राणायाम द्वारा वाम कुक्षि स्थित पाप पुरुष की दाह क्रिया तथा पुण्य पुरुष की उत्पादन क्रिया और प्राण प्रतिष्ठा न्यास की कर्तव्यता विषयक सूचना दी गई है। न्यास कृत्वा पद्य में दिखाये गये न्यासों को करके जो साधक भवतीं स्मरेत् तुम्हारा ध्यान करता है (अपने मन में तुम्हारी भावना करता है) स वह साधक त्वमेव तुम्हारा ही शरीर धारण करता है अर्थात् त्वद्रूप हो जाता है, न्यास करके वे न्यास कौन से हैं जिनके विधान से त्वद्रूपता हो जाती है (मिलती है) मुनि महाराज उनको दिखाते हैं :- गणेशग्रह भगण महायोगिनी राशिपीठैः पञ्चाशन्मातृकार्णैं सहित बहुफलैः अर्थात् पहले-अन्तर्मातृकान्यास और वहिर्मातृकान्यास किये जाते हैं। अन्तर्मातृकन्यास के स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकार के ध्यान हैं स्थूल ध्यान निम्नलिखित है :—

कामेन्दौ रसनार्ण कर्णिकस्त्रचां द्वन्द्वैः स्फुरत् केशरं
पत्रान्तर्गत पञ्च वर्ग यश कार्णादि त्रिवर्ग क्रमात्।

व्योम हकार, इन्दु सकार और स्वरूप रसनार्था विसर्गः वकारः लाङ्गलि ठकार,

सूक्ष्मध्यान नीचे लिखते हैं :—

मूलाधाराद्ध्वनिं श्रुत्वा प्रबुद्धा शक्तिकुण्डली।
ज्वलत्पावक सं काशा सूक्ष्मा तेजः स्वरूपिणी॥
मूलाधाराच्छिरःपद्मं स्पृशन्ती विद्युदाकृतिः।
तया स्पृष्टशिरः पद्मादमृतो यः स्वरूपिणः॥

निर्गतान् मातृका वर्णान् सुषुम्णा वर्त्मना तनुम् ।
व्यापयित्वा स्थितान् सर्वान् एवं ध्यात्वा प्रविन्यसेत् ।

अर्थात् मूलाधार कमल से ध्वनि को सुनकर जाग्रत सूक्ष्म तेजः स्वरूप वाली कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार चक्र से उठकर सहस्रदल कमल में पहुंचती है वहां से सुधा सागर स्वरूप सहस्रदल पद्मस्थल चिच्चन्द्र मण्डल से अमृत वर्षा के साथ निर्गत मातृकाक्षरों को सुषम्णा नाड़ी द्वारा शरीर में व्याप्त जानकर उनका न्यास करे ।

इस प्रकार कण्ठ में षोडश दल कमल का ऊर्ध्वमुख ध्यान कर उसमे षोडशस्वरों का न्यास करे । ४ हंसः सोहं अं नमः ४ हंसः सोहं आं नमः इत्यादि,

अन्तर्मातृका न्यास के अनन्तर वहिर्मातृका न्यास किया जाता है उसका ध्यान नीचे लिखा है :—

पञ्चाशद्वर्णभेदैर्विहितवदनदोः पादयुक्कुक्षिवक्षो
देशां भास्वद् कपर्दा कलितशशिकलामिन्दुकुन्दावदाताम्
अक्षस्रक् कुम्भचित्ता लिखितवरकरां त्रीक्षणां पद्मसंस्थां
अच्छाकल्पामतुच्छस्तन जघनभरां भारतीं तां नमामि ॥

इस प्रकार ध्यान कर ४ अं नमः ललाटे ४ ओं नमः मुखे इत्यादि, अन्तर्मातृका न्यास और वहिर्मातृका न्यास ये दोनों शुद्धमातृका न्यास कहे जाते है "अत्र शुद्ध त्वेपि विन्दु युक्तत्वं वर्णानां वीर्यं योजनार्थम्" अर्थात् शुद्ध होने पर भी इनके ऊपर विन्दु लगाने से इनकी शक्ति बढ़ जाती है ।

वहिर्मातृका न्यास के सृष्टि, स्थिति और संहार तीन क्रम है, विन्दुमातृका न्यास—इसका ध्यान :—

अक्षस्रजं हरिणपोतमुदग्रटङ्कं
विद्यांकरैरविरतं दधतीं त्रिनेत्राम्
अर्द्धेन्दुमौलिमरुणामरविन्दवासां
वर्णेश्वरीं प्रणमत स्तनभार नम्राम् ॥

क्षकार से न्यास प्रारम्भ करने से अकारतक विलोम रीति से (संहार क्रम से) होता है। हृदयादि ब्रह्मरन्ध्रान्तं क्षंनमः। हृदयादि नाभ्यन्तं लं नमः। इसको संहार मातृका न्यास भी कहते हैं।

विसर्ग मातृका न्यास–में वर्ण विसर्ग युक्त होते हैं। शेष शुद्ध मातृ का न्यास के समान हैं। यह सृष्टि मातृका न्यास है।

विन्दु विसर्ग युक्त मातृकान्यास -ध्यान :—

सिन्दूर कान्तिममिताभरणां त्रिनेत्रां,
विद्याक्षसूत्र मृगपोतवरं दधानाम्।
पार्श्वस्थितां भगवतीमपिकांचनाङ्गी,
ध्यायेत् कराब्जधृत पुस्तकवर्णमालाम् ॥

दक्षिण गुल्फे ४ उं नमः। अंगुलिमूले ४ ढं नमः।

इसी प्रकार क्षं नमः पर्यन्त। पुनः अः नमः इत्यादि वं नमः मूर्द्धादि दक्षिण जान्वन्तम्। शुद्ध मातृ स्थानेष्वेवन्यसेत्। अर्थात् उकार से न्यास आरम्भ कर क्षकार तक, पुनः अकार से लेकर ऊकार तक न्यास करे। यह स्थिति रूप विंदु विसर्ग युक्त मातृका न्यास है।

इनके अनन्तर हृल्लेखादिन्यास श्रीबीजादि मातृकान्यास, काम वीजादि मातृका न्यास, त्रिवीजादि (ह्रीं श्रीं क्लीं) मातृकान्यास वाला न्यास, परासम्पुटित मातृका न्यास,

श्रीविद्या युक्त मातृका न्यास, हंस मातृका न्यास और परम हंस मातृका न्यास सौभाग्य रत्नाकर नाम के तंत्रग्रंथ में (श्री विद्या विषयक ग्रंथ में) लिखे हैं तथा यह भी लिखा है कि "अर्थात् अपने शरीर में देवत्व का सम्पादन कर (देवता रूप होकर) देवों की पूजा का अधिकारी होता है। तथा न्यास द्वारा जब तक साधक स्वयं देवरूप न बने तब तक देवता की पूजा का अधिकारी नहीं बन सकता है।

अतएव 'सहित बहुकलैः पञ्चाशन्मातृकार्णैः' कलाओं से युक्त मातृकाऽक्षरों से भी स्वदेह में न्यास करना लिखा है।

प्रणवोत्थकला मातृकान्यास—

इस न्यास के ऋषि प्रजापति और छंद गायत्री है, और कलामयी मातृका सरस्वती देवता है।

ध्यानः—हस्तैः पद्मं रथाङ्गं गुणमथ हरिणं पुस्तकं वर्णमालां, टङ्कं शुभ्रं कपालं दलममृतलसद् हेमकुम्भं वहंतीम् मुक्ताविद्युत पयोदस्फटिक मणिजपावन्धुरैः पञ्चवक्त्रैः स्त्र्यक्षैर्वक्षोजनम्रां सकलशशिनिभां शारदांतां नमामि ॥ ४ ॐ अं निवृत्यैनमः, ४ ओं आँ प्रतिष्ठायैनमः, एवं शुद्ध मातृ का स्थानों में न्यास किया जाता है।

तारोत्थ कला मातृका न्यास में नादात्मा सदाशिव से उत्पन्न स्वरकला श्वेतवर्ण और अक्षस्रक्, पुस्तक पाश और कपाल हाथों में धारण करती है, कवर्ग कला ब्रह्मा से उत्पन्न पीतवर्ण अक्षस्रक्, पंकज अभय और कमण्डलु करा है। टवर्ग और तवर्ग कला उकार स्वरूप विष्णु से उत्पन्न श्यामवर्ण अभय शंख, चक्र और वरकरा है। प वर्ग और य वर्ग से

उत्पन्न मकार स्वरूप रुद्र से द्भूत गौरवर्ण, अभय, शूल, कपाल और वर करों में धारण करती है। यदि पंचवर्णों में ईश्वर स्वरूप विन्दु से उत्पन्न अभय हरिण टंक और वर लिये हुई हैं। इस प्रकार उनका ध्यान कर न्यास किया जाता है।

'स श्री कण्ठादि युग्मैः केशवाद्यैश्च,' अर्थात् श्री कण्ठ और पूर्णोदरी सहित युग्म न्यासों से तथा 'केशवाद्यैः' केशव और कीर्ति सहित युग्म न्यासों से—श्री कण्ठादि मातृका न्यास—दक्षिणा मूर्ति ऋषि—गायत्री छन्द श्री अर्धनारीश्वर देवता व्यञ्जन वीज, स्वरशक्ति, अव्यक्त कीलक श्री विद्याङ्गत्वे (जपाङ्गत्वे) विनियोग, ध्यान :—

वन्धूककाञ्चननिभं रुचिराक्षमालां,
पाशांकुशौच वरदं निजवाहुदण्डैः।
विभ्राणमिन्दु सकलाभरणं त्रिनेत्रं,
अर्द्धाम्विकेशमनिशं वपुराश्रयामः ॥

न्यास—४ हसौ श्रीकण्ठेशाय पूर्णोदर्यैनमः, ४ हसौ आं श्री अनन्तेशाय विरजायैनमः। इस प्रकार मातृका स्थानों में न्यास किया जाता है।

(केशवादिन्यास)

केशव कीर्तिन्यास—प्रजापति ऋषि, गायत्री छन्द, अर्ध-लक्ष्मी हरिर्देवता, तथा च गौतमीये :—

ऋषिः प्रजापतिश्छन्दो गायत्री देवता पुनः।
अर्ध लक्ष्मी हरिः प्रोक्त श्री वीजेनाङ्ग कल्पनेति ॥

ध्यानम् : —

उद्यत्प्रद्योतन शतरुचिं तप्त हेमोवदातं—
पार्श्वद्वन्द्वे जलधि सुतमा विश्वधात्र्या च जुष्टम् ।
नाना रत्नोल्लसित विविधा कल्पमापीत वस्त्रम्,
विष्णुं वन्दे दर कमल कौमोदकी चक्रापर्णि ।।इति

न्यास—४ अं केशवाय कीर्त्यै नमो ललाटे ४ आं नारायणाय कान्त्यै नमो मुखे, इत्यादि वहिर्मातृका न्यासवत् । अगस्त्य संहिता में लिखा है कि मातृकाक्षर का उच्चारण कर केशवाय कान्त्यै नमः इस प्रकार न्यास करे नकि केशव कीर्तिभ्यां नमः -ऐसा कह कर न्यास तथा च—

मातृकार्ण समुच्चार्य केशवाय इति स्मरेत् ।
कीर्त्यैच नमसा युक्तमित्यादिन्यासमाचरेत् ।।
केशवाय ततः कीर्त्यै कान्त्यै नारायणाय च ।
नतु केशवकीर्तिभ्यान्नम इत्यादिकं चरेत् ।।
अत्र रुद्राः मृताः रक्ताधृतशूलकपालकाः ।
सूक्तयो रुद्रपीठस्थाः सिन्दूरारुणविग्रहाः ।।
रक्तोत्पलकपालाभ्यां अलंकृतकराम्बुजाः ।
इति मूर्ति शक्तीनां ध्यानम् ।।

अथपूर्व षोढान्यास :—

श्री कण्ठादिन्यास और केशवादि न्यास के अनन्तर पूर्व षोढ़ान्यास की युक्तियां दिखाते हैं—गणेश ग्रह भगण महायोगिनी राशि और पीठ से न्यास करे :—

गणेशैः प्रथमोन्यसं द्वितीयस्तु ग्रहैर्मतः ।
नक्षत्रैस्तु तृतीयः स्याद्योगिनीभिश्चतुर्थकः

राशिभिः पञ्चमोज्ञेयः षष्ठःपीठै निगद्यते ।
षोढ़ान्यासस्त्वयं प्रोक्तः सर्वत्रै वापराजितः ।।
(नित्याषोडशिकार्णव)

अर्थात् साधक सर्व प्रथम एक पञ्चाशद् (५१) विघ्नेश, विघ्नराज, विनायक आदि सशक्तिक गणेशों का मातृका-स्थानवत् और मातृकाक्षरवत् अपने शरीर में न्यास करे।

ध्यान—तरुणारुण संकान् गजस्कांस्त्रिलोचनान ।
पाशाङ्कुशवराऽभीति कराञ्शक्तिसमन्वितान्
एतस्तु विन्यसेद्देवि मातृकास्थानवत् प्रिये ।।

अर्थात् मध्याह्न के सूर्य के समान तेज वाले त्रिनेत्र पाश, अङ्कुश, वर और अभयकर सशक्तिक गणेशों का ध्यान कर मातृका स्थानवत् न्यास करे। यथा—

अं विघ्नेश्वराय श्रियै नमः। ४ गं आं विघ्नराजाय ह्रियै नमः (प्रियैनमः) ४ गं इं विनायकाय—पुष्ट्यै नमः इत्यादि। ४ अं श्री युक्ताय विघ्नेशाय नमः शिरसि, (नित्याशोडशिकार्णव)

ग्रहन्यास

तं श्वेतं तथा रक्तं श्यामं पीतं च पाण्डुरम् ।
कृष्णं धूम्रं धूम्रधूम्रं भावयेत् रविपूर्वकान् ।।
कामरूपधरान् देवि दिव्याम्बरविभूषणम् ।
वामोरुन्यस्तहस्तांश्च दक्षहस्तवरप्रदाम् ।।

अर्थात् सूर्यलाल, चन्द्रश्वेत, मंगल लाल, बुध श्याम वर्ण, गुरु शुभ्र, शनि कृष्ण, राहु धूम्र वर्ण और केतु अत्यन्त धूम्र-वर्ण है सब सुन्दर स्वरूप, दिव्यास्त्र धारी वाम उरु में बायां हाथ अर्थात् अभय मुद्रा और दाहिने हाथ में वरमुद्रा है।

न्यास–४ अं १६ स्वर–सूर्याय रेणुकाम्बायै नमः हृदयाधः। ४ यं रं लं वं चन्द्राय–अमृताम्बायै नमः भ्रुवोर्मध्ये। ४ कं ५ मंगलाय धात्र्यम्बायै नमः नेत्रयोः । एवं अन्य ग्रहों का भी न्यास करे।

नक्षत्रन्यास

ज्वलत्कालाग्निसंकाश वरदाऽभयपाणयः
नतिपाण्योऽश्विनीमुख्याः सर्वाभरणभूषिताः

४ अं आं अश्विन्यै नमः ललाटे। ४ इं ईं भरण्यैनमः नेत्रे ४ उं ऊं कृत्तिकायै नमः वाम नेत्रे रोहिण्यै–नमः दक्ष कर्णे–इत्यादि। 'दक्षाधः करयो र्वराभये–ऊर्ध्वयोर्नतिमुदे।'

योगिनीन्यास

विशुद्धौ हृदये नाभौ स्वाधिष्ठाने च मूलके।
आज्ञायां धातुनाथाश्चन्यस्तथा डादिदेवता।।

मूलके मूलंच कं च तयोः समाहारोमूलकम्–मूलाधारे ब्रह्मरन्ध्रे चेत्यर्थः। मूलके=मूलाधार और ब्रह्मरन्ध्र में आदि देवता :-डाकिनी राकिनी लाकिनी काकिनी साकिनी हाकिनी–माकिन्यः। धातु नाथा :–त्वक्, असृक्, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र की स्वामिनी।

विशुद्धि चक्र में डाँ डीं डूँ डैं डौं डः डमल वर यूँ डाकिनि मां रक्ष रक्ष मम त्वग् धातुं रक्ष रक्ष सर्वसत्ववशंकरि देवि आगच्छ-आगच्छ मम पूजां गृण्ह गृण्ह ऐं घोरे देवि ह्रीं स परमघोरे हुँ घोर रूपे एहि एहि नमः चामुण्डे डरलक स हैं श्री महात्रिपुर-सुन्दरी देवि वर दे विच्चे अ १६ विशुद्धपीठस्थे विशुद्धडाकिनि

विशुद्धनाथे देवि श्रीपादुकां पूजयामि नमः । इति कणिकायां विन्यस्य त्वदग्रादि परितस्तदावरण शक्तीर्यन्सेत् ।

४ अं अमृतायैनमः ४ आं आकर्षिण्यैनमः ४ इं इन्द्राण्यैनमः; ४ ईं ईशान्यैनमः; ४ उं उमायैनमः; ४ ऊं ऊर्ध्वकेश्यैनमः; ४ ऋं ऋद्धयैनमः; ४ ॠं ॠषायैनमः; ४ लृं लृकारायैनमः; ४ लॄं लॄषायैनमः; ४ एं एकपदायैनमः; ४ ऐं ऐश्वर्यायैनमः; ४ ओं ओकारात्मिकायैनमः; ४ औं औषधात्मिकायैनमः; ४ अं अम्बिकायैनमः; ४ अः अक्षरात्मिकायैनमः । इति प्रादक्षिण्येनन्यसेत । एता शक्तयोडाकिनीवत् ध्येया ।

ध्यान

रक्तां रक्तत्रिनेत्रां पशुजनभयकृच्छूलखड्गहस्तां
वामे खेटं दधानां चषकमपि सुरापूरितं चैकवस्त्राम्
अत्युग्रामुग्रदंष्ट्रामरिकुलदमनीं पायसान्नप्रसक्तां
कण्ठस्थानेऽमृताद्यैः परिवृतवपुषां चिन्तयेड्डाकिनीं तां

इसी प्रकार राकिनी आदिकों का भी न्यास ध्यान होगा ।

राशिन्यास

पादेलिङ्गे च कुक्षौ च हृदये वाहु मूलके ।
दक्षिणं पादमारभ्य वामपादावसानकम् ।।
मेषादिराशयो वर्णोन्र्यस्तव्या सह पार्वति ।।

अर्थात् मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह और कन्या राशियों का न्यास अपने दक्षिण भाग के पैर, लिङ्ग, कुक्षि, हृदय और कक्ष में क्रम से करना चाहिये । तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन राशियों का अपने वाम भाग के शिर, स्कन्ध, कुक्षि, वृषण, जानु और गुल्फ में न्यास करना चाहिये ।

बाहुमूले कक्षे, के मूर्घ्नि चेत्यर्थः अर्थात् कक्ष में और शिर में।

ध्यान

रक्तं श्वेतं हरिद्वर्णं पाण्डुचित्रं सितं स्मरेत्।
पिशंगपिंगलकद्रूकर्पूरारुणधूम्रकान्।

मेषादि राशियों का क्रम से ध्यान करे।

योजनीयानि मातृकाक्षराणि क्रमेणाह–
चतुष्कं त्रितयं त्रीणि द्वितयं द्वितयं द्वयम्।
पञ्चकं पञ्चक पञ्च पञ्चकं पञ्चकं ततः॥
चत्वारि मेरुमीने स्युः कन्यायां पञ्चशादयः।

अर्थात् कर्क और सिंह में दो दो अक्षर, वृष और मिथुन में तीन तीन अक्षर, मेष में चार अक्षर शेष सातों राशियों में पांच पांच अक्षर, उनमें ही कन्या में विन्दु और विसर्ग दो अधिक है शायदश्च।

मेरुःक्षकार "वर्णान्तो मेरुरेव चेति" क्षकाराधिकार में कोश कहता है—

४ अं आं इं ई रक्तवर्णाय प्राणरूपायमेष राशयेनमः दक्षगुल्फे। ४ उं ऊं ऋं ॠ श्वेतवर्णायऽपान रूपाय वृषभ-राशयेनमः दक्षजानुनि। ४ लृं लॄं हरिद्वर्णाय उदान रूपाय मिथुन राशयेनमः वृषणे—इसी प्रकार आगे भी किया जाता है।

पीठन्यास

ऋष्यादि षडङ्गन्यास पूर्वक अपने शरीर के अङ्गों में बहिर्मातृका न्यास के समान ५१ पीठों का न्यास करना चाहिये। यथा—

४ अं कामरूप पीठायनमः ललाटे, ४ आं वाराणसी पीठाय नमः मुखवृत्ते, ४ इं नेपाल, पीठाय नमः दक्षनेत्रे ४ ईं पौण्ड्रवर्धन पीठाय नमः वामनेत्रे, इत्यादि वहिर्मातृका के स्थान में पीठ का न्यास करे।

५१ पोठों के नाम सौभाग्यरत्नाकर, नित्याषोडशिकार्णव आदि तन्त्र ग्रन्थों में लिखे हैं तथा 'चण्डी' पत्रिका में भी प्रकाशित हुये हैं। न्यास करने वाले उपासकों के पास षोढा न्यास की प्रथक् पुस्तक रहती है।

षोढान्यास की महिमा

एवं योन्यास्तगात्रस्तु स पूज्यः सर्वयोगिभिः।
नास्त्यस्य पूज्यो लोकेषु पितृमातृमुखोजनः॥
स एव पूज्यः सर्वेषां स स्वयं परमेश्वरः।
षोढ़ान्यास विहीनं यं प्रणमेदेष पार्वति
सोऽचिरान्मृत्युमाप्नोति नरकं च प्रपद्यते॥
(नित्या षोडशिकार्णव)

अर्थात् षोढान्यास करने वाला साधक सब योगियों का पूज्य होता है इसका पूज्य कोई नहीं होता है वह स्वयं परमेश्वर है यदि यह षोढान्यास करने वाले पुरुष को गुस्से में आकर प्रणाम करे तो उसकी शीघ्र मृत्यु हो जाती है और मरकर नरक में पड़ता है।

इस प्रकार षोढान्यास करने से तथा अष्टवाग्देवताभिः वाग्देवताष्टक न्यास करने से—वाग्देवता न्यास-यथा-४ अं आं + + अः (बीज) वशिनी वाग्देवतायैनमः (शिरशि) ४ कं खं गं घं ङं (वीज) कामेश्वरी वाग्देवतायैनमः (ललाटे)।

४ चं छं जं झं ञं (बीज) मोदिनि वाग् देवतायैनमः (भ्रूमध्ये) ४ टं ठं डं ढं णं(बीज)टल्ं विमला वाग्देवतायैनमः (कण्ठे) एवं तवर्ग से अरुण वाग्देवता का (हृदय में) पवर्ग से जयिनी वाग्देवता का (नाभि में) और ऊष्म अक्षरों के साथ ल और क्ष से कौलिनी वाग्देवता का न्यास (मूलाधार में) किया जाता है।

धराद्यैः षट् त्रिंशद्भिः तत्वैः' पृथिवी आदि छत्तीस तत्वों से युक्त चतुस्तत्व न्यास से जो साधक तुम्हारा स्मरण करता है, यथा नाभ्यादि पाद द्वयाग्रान्तं मन्त्र के प्रथम कूट का उच्चारण कर 'ऊं ऐं प्रकृत्य–हङ्कार वुद्धि मनः श्रोत्र त्वक् जिह्वा घ्राण वाक् पाणि पाद पायूपस्थ शब्द स्पर्श रूप रस गन्धाकाश वायु तेजो जल भूम्यात्मतत्वात्मने नमः।

स्कन्धादि नाभ्यन्तं द्वितीयकूटमुच्चार्य ॐ क्लीं माया कला विद्या राग काल नियति पुरुषात्मक विद्या तत्वात्मने नमः।

ब्रह्म रन्ध्रादि कण्डान्तं मन्त्रतृतीयकूटमुच्यार्य ॐ सौः शिव शक्ति सदा शिवेश्वर शुद्ध विद्यात्मक शिव तत्वाय नमः।

समस्त विद्यामुच्चार्य ऊँ ऐं क्लीं सौ :—

प्रकृत्यहंकार वुद्धि मनः श्रोत्र त्वक् चक्षु .... सर्व तत्वामने नमः इति मूर्द्धादिपादपर्यन्तं पादादिहृदयान्तं च त्रिर्व्यापकं न्यसेत्।

उक्त प्रकार के चतुस्तत्व न्यास से तुम्हारा स्मरण करने वाला साधक तुम्हारे स्वरूप में ही मिल जाता है अर्थात् तुममें और साधक में भेद नहीं रहता।

"एवं षोढा पुराकृत्वा श्रीचक्रन्यासमाचरेत्।"

षोढा न्यास के अनन्तर योग पीठ न्यास (मूलाधारे–

मण्डलायनमः इत्यादि) और उसके अन्त में श्री न्यास अत्यन्त आवश्यक है। लिखा भी है :—

शरीरं चिन्तयेदादौ निजं श्रीचक्ररूपिणम् ।
त्वगाद्याकार निर्मुक्तं ज्वत्कालाग्निसन्निभम् ॥

श्री चक्रन्यास अपने शरीर में करने का तात्पर्य –(देह में) नवावरण न्यास करना है। इसके भी संहार, सृष्टि और स्थिति तीन भेद हैं।

श्री चक्र न्यास का फल

य एवं विन्यसेद्देहे साधकः स्थिरमानसः ।
विमुच्य मानुषं भावं स सद्यः शिवतांव्रजेत् ॥

अर्थात् श्री चक्र न्यास करने से साधक शिवत्व को प्राप्त होता है।

महाशक्तिन्यास

वाग्भव वीज कामकला और परा (शक्ति) वीज श्रीमन्त्रराजाय नमः अर्थात् यह पराशक्ति का मन्त्र राज है, महाशक्ति न्यास के विषय में लिखा है–

शक्तिन्यासे कृते जीवे यः कश्चिच्छेदको भवेत् ।
कर्मणा मनसावाचा तस्यपातो भविष्यति ॥

अर्थात् शक्ति न्यास करने वाले साधक के साथ मन वचन कर्म से द्वेष करने वाले की मृत्यु होती है।

महाषोढान्यास

ध्यान :-अमृतापर्व मध्यस्थे सवर्णाद्वीपशोभिते मंडपे ।
कल्पवृक्षवनान्तस्थे नवमाणिक्यमंडपे ॥
नवरत्नमये श्रीमत् सिंहासनगताम्बुजे ।
त्रिकोणान्तः समासीनं चन्द्रसूर्यसमप्रभम् ॥

पञ्चवक्त्रं चतुर्बाहुँ सर्वाभरणभूषितम् ।
चन्द्रसूर्यसहस्त्राभं शिवशक्त्यात्मकं भजे ।।
वपुरिति शेषः ।

महाषोढोन्यास का लक्षण : —

प्रपञ्चो भुवनं मूर्तिर्मन्त्रदैवतमातरः ।
महाषोढा ह्वयोन्यासः सर्वन्यासोत्तमोत्तमः ।।

अर्थात् १ प्रपंच न्यास, २ भुवनन्यास, ३ मूर्तिन्यास, ४ मंत्रन्यास, ५ देवता न्यास और ६ मातृन्यास—महाषोढा न्यास कहलाता है यह न्यास सब न्यासों में प्रधान है ।

ऊर्ध्वाम्नायप्रवेशश्च पराप्रासादचिन्तनम् ।
महाषोढा परिज्ञानं नाल्पस्य तपसः फलम् ।।

अर्थात् ऊर्ध्वाम्नाय से दीक्षित होना, पराप्रसाद बीज का चिन्तन और महाषोढ़ान्यास का ज्ञान ये तीनों बातें बड़े भारी पुण्यों के फल से मिलती हैं ।

शिरसि श्रीगुरुं ध्यात्वा तद्विद्यया तत्पादुकां विन्यस्य प्रणमेत् ।

मूलमन्त्रन्यास, षड़ासनन्यास, षडङ्गयुवतिन्यास, वाग्देवताष्टक न्यास, चतुष्पीठन्यास—(कामगिरि, जालन्धर, पूर्णगिरि और उद्यान पीठ का न्यास और चतुस्तत्व न्यास यथाक्रम महाषोढा न्यास के अनंतर सौभाग्य रत्नाकर में दर्शाये गये हैं ।

इनमें से वाग्देवताष्टक न्यास (अष्टवाग्देवताभिः) और चतुस्तत्व न्यास श्लोक की व्याख्या में ऊपर दिखाये गये हैं ।

महाषोढान्यास श्रीषोडशाक्षरी (षोडशी) के उपासक के लिये हैं। पञ्चदशी के उपासक के लिये लघुषोढान्यास है, इसका नाम पूर्वषोढा न्यास भी है। और महाषोढा न्यास को उत्तरषोढा न्यास भी कहते हैं।

षोडशीं के उपासक को श्रीषोडशाक्षरी न्यास, सम्मोहन-न्यास संहारन्यास सृष्टिन्यास और स्थितिन्यास ये पांच न्यास करना भी अत्यावश्यक है।

नियोत्सव के अनुसार पञ्चदशी के उपासक के लिये– मातृका न्यास, करशुद्धिन्यास आत्मरक्षान्यास चतुरासनन्यास, बाला षडङ्गन्यास, वशिन्यादि न्यास, मूलविद्यावर्ण न्यास, षोढान्यास और श्रीचक्र न्यास अत्यन्त आवश्यक हैं। श्रीषोडशी का उपासक भी पञ्चदशी के अतिरिक्त उपर्युक्त पांच न्यास भी करेगा।

वामकेश्वर तन्त्रान्तर्गत नित्याशौडशिकार्णव में ४४ प्रकार के न्यासों से घटित चार प्रकार के गणन्यास दर्शाये हैं-षोढान्यास, अणिमादिक मूलदेव्यादिक और कर शुद्धयादिक न्यास।

षोढा न्यास के छः भेद, अणिमादिक और मूल देव्यादिक के ग्यारह भेद तथा करशुद्धयादि न्यास गण के षोडश भेद, सब का योग चवालीस ४४ होता है। इनका समय भी वहीं पर दर्शाया है:–

प्रातःकाल में, पूजा समय में, अथवा होम के समय या जप के समय।

यदि इतनी बार समय न मिले तो पूजा समय में ही सब प्रकार के न्यास करना चाहिये ।

पूजाकाले समस्तं वा कुर्यात् साधक पुंगवः । ६७।८

प्रातःकाल मेंसन्ध्यादि मातृकान्यास कर्म के अनन्तर पूजा काल में पात्रासादन से पूर्व, होम कर्मनैवेद्यकालीन होम के आरम्भ में जपकाल–कुलदीप निवेदन के पश्चात् । व्यवस्था के न होने पर पूजा समय सब न्यास एक बार किये जा सकते हैं ।

विशेष नित्या षोडशिकार्णव की सेतुबन्ध व्याख्या के ८ आठवें विश्राम के ९५वें से ९७वें पद्यों की व्याख्या ३०४ और ३०५वें पृष्ठ में देखें ।

संक्षेप में इस पद्य का सरल अर्थ निम्नलिखित होगा :—

हे भगवति महात्रिपुरसुन्दरी जो साधक (उपासक) इक्कावन प्रकार के विघ्नेश विघ्नराज आदि गणेशों (पुष्टि आदि शक्तियों सहित गणेशों) नवग्रहों (सूर्य आदि ग्रहों) अश्विनी भरणी आदि सत्ताईस नक्षत्रों, दलों में अङ्ग देवताओं सहित और कणिकाओं में डाकिनी आदि प्रधान देवताओं महायोगिनियों (षट् चक्रों के प्रधान देवताओं) द्वादश (बारह) मेष, वृष आदि राशियों तथा मातृका न्यास के ललाट आदि स्थानों में कामरूप [कामाक्षा] वाराणसी नेपाल आदि एक पञ्चाशत् (५१) पीठों से [स्थानों से] न्यास करने से [अपने] शरीर में षोढान्यास करने से) तथा शरीर के ५१ अङ्गों में प्रणवोत्थकला मातृकान्यास और तारोत्थ कला मातृकान्यास

बिंदु, विसर्ग और बिंदुविसर्ग युक्त मातृकान्यास करने से वशिनी, कामेश्वरी आदि वाग्देवताष्टक न्यास, श्री कण्ठादि युग्म [श्री कण्ठ और पूर्णोदरी का जोड़ा] तथा केशवादि युग्म [केशव और कीर्ति का युगल] के न्यास करने से, पृथिव्यादि छत्तीस ३६ तत्वों से युक्त आत्मतत्व, विद्या तत्व, सर्व तत्व न्यास से [चतुस्तत्व न्यास से] निर्मल निष्पाप दोष रहित शुद्ध अपने शरीर के भीतर (हृदय में) तुम्हारा स्मरण करता है अर्थात् तुम्हारी भावना करता है वह (साधक) तुम्हारा ही स्वरूप बन जाता है। अर्थात् उसमें और तुममें भेद नहीं रहता है। वह स्वयं महात्रिपुरसुन्दरी स्वरूप हो जाता है।

टिप्पणी ;—

हे भगवति-भगवती शब्द की निरुक्ति—

उत्पत्तिं प्रलयञ्चैव भूतानां गतिमागतिम्।
अविद्याविद्ययो स्तत्वं वेत्तीति भगवत्यसौ ॥
(देवीभागवते)

भगमैश्वर्यमाहात्म्यज्ञानवैराग्ययोनिषु ।
यशोवीर्य प्रयत्नेच्छा धर्मश्रीरविमुक्तिषु ॥
(इति कोशे)

भगवती शब्द की निरुक्ति में दो पद्य शक्तिरहस्य और कालिका पुराण के व्याख्या में ऊपर लिखे गये हैं।

: ४७ :

परदेवता की उपासना का ऐहिक फल दिखाते हैं :

मालिनी छन्द

सुरपतिपुरलक्ष्मीजृम्भणातीत लक्ष्मीः
प्रसरति निजगेहे यस्य दैवं त्वमार्ये ।
विविधबहुकलानां पात्रभूतस्य तस्य
त्रिभुवनविदिता सा जृम्भते स्फूर्तिरच्छा ॥४७॥

व्याख्या—

हे आर्ये ! हे श्रेष्ठे ! (अपने से सर्वगुण सम्पन्न श्रेष्ठ महापुरुष के लिये आर्य और स्त्री के लिये आर्या कहा जाता है) आर्या का सम्बोधन आर्ये। "महाकुलकुलीनार्यसभ्य-सज्जनसाधवः" अमरकोश। विविध वहुकलानां-नाना प्रकार की (नाना चमत्कार–कारिणी) अनेक कलाओं विद्याओं (शिल्पविद्याओं) के "कलाशिल्पे–गीत वाद्यादिनैपुण्ये" पात्र भूतस्य निवास स्थान यस्य यस्य कस्यापि-जिस किसी की कोई भी तुम्हारा साधक किसी भी वर्ण का हो) त्वं–तू (महात्रिपुर सुन्दरी) दै–इष्ट देवता है, 'त्वं' मध्यम पुरुष के साथ 'असि' मध्यम पुरुष की—क्रिया लगेगी। तस्य तुम्हारे उस साधक की (चाहे वह कोई भी हो) निज गेहे अपने घर में सुरपति पुर लक्ष्मी जृम्भणातीत लक्ष्मीः सुरपति देवताओं के स्वामी इन्द्र (देवराज) के पुर की नगर की (अर्थात् अमरावती को) लक्ष्मी की सम्पत्ति के "सम्पत्तिः श्रीश्च

लक्ष्मीश्च" विलास से भी अधिक विलासवती प्रसरति फैलाती है अर्थात्, विस्तृत होती है। त्रिभुवन विदिता-तीनों भुवनों लोकों में विदिता विख्यात सा (भगवती के प्रसाद से प्राप्त) वह अच्छा निर्मल अर्थात् निर्दोष स्फूर्तिः चमत्कार जृम्भते फैलाता है प्रकाशित होती है।

इस पद्य का सरल अर्थ नीचे लिखा जाता है :—

हे आर्ये हे भगवति महात्रिपुर सुन्दरि; चमत्कार दिखाने वाली अनेक प्रकार की बहुत सी कलाओं का [६४ कलाओं का] निवास स्थान अर्थात् ६४ कलाओं के जानने वाले विद्वान् के जिस किसी भी तुम्हारे साधक की त्वं [तू] इष्ट देवी बन जाती है उसके घर में देवराज इन्द्र की सम्पत्ति को लज्जित करने वाली विलासवती लक्ष्मी [सम्पत्ति] विस्तृत होती जाती है।

और त्रिलोकी में विख्यात देवी के प्रसाद से प्राप्त वह निर्मल [निर्दोष] स्फूर्ति [चमत्कार] प्रकाशित होती रहती है। पद्य में मालिनी छन्द है। उसका लक्षण "न न म य युतेयं मालिनी–भोगिलोकैः" वृत्तरत्नाकर।

टिप्पणी:—

यस्यदवं त्वमार्ये! यहाँ पर 'यस्य' का अर्थ जिस किसी का टीकाकार ने लिखा है—

यस्य—'यस्यकस्यापि साधकस्य' इति इससे साधक चारों वर्णों में से किसी वर्ण का भी हो–यह तात्पर्य है। यतः श्री पद्म पादाचार्य ने 'प्रणव' की व्याख्या में "अकारोकार मकारात्मा–इत्यनेन भेद त्रयेण प्रणवादि मन्त्रेषु त्रैवर्णिका

एवाऽधिकारिणों न स्त्री शूद्रा–इत्यादि सूचितम्—इत्युक्तम्" स्त्री और शूद्रों के लिये वैदिक मन्त्रों का अधिकार नहीं है।

तथा "नृसिंह तापनीये"—

सावित्री प्रणवं यजुर्लक्ष्मी स्त्री शूद्राय नेच्छन्ति सावित्री लक्ष्मी तजुः प्रणवं यदि जानीयात् स्त्री शूद्रः स्मृता अधो गच्छति।

नारद पञ्चरात्र में भी :—

ब्राह्मणक्षत्रियविशो पञ्चरात्र विधीयते।
शूद्रादीनां न तत् श्रोत्रपदवीमपि गच्छति ॥इति॥

यह नारायणाष्टकाक्षर मन्त्र के विषय में लिखा गया है कि मन्त्र स्त्री और शूद्र के कान में नहीं जाना चाहिये। अतः शिवार्चन चन्द्रिका में लिखा है—

वैदिको मिश्रतो वापि विप्रादीनां विधीयते।
तान्त्रिको विप्रभक्तस्य शूद्रस्यापिप्रकीर्तितः ॥

अर्थात् तान्त्रिक मन्त्र की उपासना करने का अधिकार विप्रभक्त शूद्र के लिये भी हैं। तथाच—

'स्त्री शूद्राणामयं मन्त्रो नमोन्तस्तु शुभावहः ॥

(याज्ञवल्कयः)

एतत् ज्ञात्वा महासेन चाण्डालानपि दीक्षयेत् ॥

(प्रसाद मन्त्र प्रकरणे)

पिङ्गलामते :—

"चतुर्णां ब्राह्मणादीनां दीक्षां कुर्वन्ति मन्त्रवित्"

अर्थात् चारों वर्ण की दीक्षा करे (गुरु)

अन्यत्रापि :

ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्रा आचार्यः शुद्धः वुद्धयः
गुरु देव द्विजार्चाषुरताः स्युरधिकारिणः ।।इति।।

अर्थात् चारों वर्ण गुरुदेवता और ब्राह्मणों की सेवा में तत्पर होकर तान्त्रिक मन्त्र ग्रहण कर सकते हैं।

मानसार्चन

मातस्त्वं भूर्भुवःस्वर्महरसि सुतनुस्त्वन्तरिक्षेन्दुसूर्य-
रात्मा शुक्रामरेन्द्रैरपिनिगममहाब्रह्मभिः प्रोतशक्तिः ।
प्राणापानादियुक्तैः कलयति सकलं मानसं ध्यान योगं
येषां तेषां सपर्या भयति सुरकृता ब्रह्मता योगिनां च ।४८।

अब महामुनि दुर्वासा भगवती श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी से क्षमा याचना करते हैं :—

क्कमे बुद्धिर्वाचा परमविदुषो मन्दसरणिः
क्कते मातर्ब्रह्म प्रमुखबिबुधस्याप्तवचसाम्।
अभून्मे विस्फूर्तिः परतरमहिम्नस्तव नुतिः
प्रसिद्धं क्षन्तव्यं वहुलतरचापल्यमितिमे ॥४६॥

व्याख्या :—

'हेमातः' हेमाता महात्रिपुरसुन्दरी 'परं अविदुषः' अत्यन्त मूर्ख (महामूर्ख) 'मे' मेरी (दुर्वासा की) 'मन्दसरणिः' शास्त्रों के ज्ञान में जिसकी सरणि (मार्ग) अत्यन्त मन्द है, यह पद बुद्धि का विशेषण है।

"अयनंवर्त्म मार्गाध्व पन्थानः पदवी सृतिः सरणिः पद्धतिः" अमरकोश। ऐसी मेरी 'बुद्धि' मति 'क्व' कहां? अर्थात् कहां तो मेरी बुद्धि और वाणी? और कहां तुम्हारी वाणी है? स्तुति? दोनों परस्पर मेल नहीं खातीं स्तुति के विषय में कहता है—तुम्हारी स्तुति करने में ब्रह्म प्रमुख विबुधस्य' ब्रह्मा विष्णु आदि मुख्य देवताओं के आप्तवचनों की भी गति जहां अत्यन्त मन्द है। तथापि नुति का विशेषण है और 'तव' तुम्हारी 'परतरमहिम्नः' जिसकी महिमा बहुत बड़ी है ऐसी तुम्हारी 'नुतिः' स्तुति-'स्तव स्तोत्रं स्तुति र्नुतिः' अमरकोश। क्व कहां? तथाति तुम्हारी स्तुति करने में मे (मेरी) विस्फूर्ति जो मुझे स्फुरण यभूत् हुई है, इति-इसके लिये (इस कारण) प्रसिद्धं अत्यन्त प्रसिद्ध बहुतर चापल्यं, बड़ी चपलता (चंचलता किंवा मुखरता) को 'क्षन्तव्यं' क्षमा

करना मैं तुमसे क्षमा माँगता हूं। अतएव श्री शङ्कराचार्य जी ने देव्यपराधक्षमापन स्तोत्र में कहा है :–

"कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति" इति अर्थात् पुत्र तो कुपुत्र हो सकता है किन्तु माता सर्वदासर्वथा सर्वत्र अपने पुत्रों के लिए एकरस रहती है। इस पद्य में शिखरिणी छन्द है–लक्षण इसका–'रसैः रुद्रै श्छिन्ना यम न स भ लागः शिखरिणी' इस प्रकार है।

इस पद्य में महामुनि दुर्वासाजी ने माता के सामने अपने को परम विदुषः' कहकर–(बताकर) अपना औद्धत्य दूरकर अपनी सरलता दिखलाई है। यह माता के प्रति पुत्र का कर्त्तव्य ही है।

शिव महिम्नः स्तोत्र में भी पुष्पदन्ताचार्य ने–

महिम्नः पारंते परम विदुषो यद्यसदृशी

स्तुति ब्रंह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरा ॥ इत्यादि लिखकर अपने औद्धत्य का परिहार किया है। इसी भाँति श्री नीलकण्ठ दीक्षित भी श्रीमाता के सम्मुख आनन्दसारस्तव में अपनी मूर्खता का परिचय देकर उसकी शरणागत वत्सलता को दिखाते हैं–

काचित् वक्ता वक्तिरिति त्वयि सार्पितेति
काऽपि प्रमोद कणिका मम नाऽन्तरङ्गे ।
मदीयमिह यद्विदित ममैव
किन्त्वम्ब विश्वसिति दीन शरण्यतांते ॥

अर्थात् मैंने तुम्हारे विषय में कोई रचना की है और उसे तुम्हें समर्पित कर दिया इसकी मेरे में लेश मात्र भी

प्रसन्नता नहीं है, अतः मैं अपनी मूर्खता को स्वयं समझता हूं। किन्तु तुम्हारी दीन शरण्यता पर मुझे विश्वास है।

एवमेव हमारे अग्रज विहारोत्कल प्रान्तीय संस्कृत शिक्षाध्यक्ष स्व० ईश्वरीदत्त दौर्गादित्ति शास्त्री जी ने अपनी 'भक्तिलहरी' के अन्त में लिखा है—

हे माता महेश रमेश और शेष तुम्हारे माहात्म्य के लेश मात्र कथन में अपने को असमर्थ पाकर लज्जा से कैलाश क्षीरसागर और पाताल में जा बसे हैं। तुम्हारे उस माहात्म्य के वर्णन में मेरी मुखरता को देखकर तुम अवश्यमेव मुस्करा जाओगी तथाहि—

अनीशा अत्यन्तं कणमपि त्वदीयं कथयितुं
सुराधीशाः केचिद् गिरिजलधिपातालनिलयाः।
त्वदीये माहात्म्ये जननि मम तस्मिन्मुखरता
मुखेन्दोः कान्ति ते विकचयति काञ्चित् स्मितमयीम्॥

इस पद्य का सरलार्थ निम्नलिखित है :—

हे माता कहां तो मेरी बुद्धि है ! और कहां मेरी वाणी है ? स्तुति करने के लिये बुद्धि और भाषा दोनों की नितान्त आवश्यकता होती है। वे दोनों ही मेरे पास नही हैं। स्तुति करने में ब्रह्मा, विष्णु आदि देवगण भी मति मन्दता का (अपनी-न्यूनता का अनुभव करते हैं) और मैं तो स्वभावतः मन्द बुद्धि हूं अतः मैंने जो तुम्हारी अगम्य महिमा के वर्णन में अपनी स्वाभाविक अत्यन्त चपलता का प्रदर्शन किया है उसके लिये मैं तुमसे क्षमा याचना करता हूं।

: ५० :

अब दुर्वासा मुनि साधक के मन की बात को भगवती से निवेदन करते हैं :—

प्रसीदपर देवते मम हृदि प्रभूतं भयं
विदारय दारिद्रतां दलय देहि सर्वज्ञताम् ॥
विधेहि करुणानिधे चरणपद्मयुग्मं स्वयं
विदारितजरामृति त्रिपुरसुन्दरी श्री शिवे ॥५०॥

व्याख्या :—

हे परदेवते (परा चासौ देवता कर्मधारय समास) सम्बोधन में हे परदेवते सर्वोत्कृष्ट देवते-महेश्वरि 'प्रसीद' तुम मेरे ऊपर प्रसन्न होवो, स्वामी के प्रसन्न होने पर ही कार्य सिद्धि हो सकती है, भगवती की प्रसन्नता के अनन्तर साधक अपने हृदय के दुःख को निवेदन करता है कि 'मम हृदि' मेरे हृदय में 'चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मनः' ॥ अमरकोश। प्रभूतं प्रकर्षेण भूतं अधिकता से उत्पन्न 'भयं' डरको- 'विदारय' निवारण कर अर्थात् समूल नाश कर, संसार में आवागमन का भय (जन्ममरण का भय) अर्थात् पैदा होने का और मरने का भय प्राणिमात्र को होता है अतः तुम मेरे इस भय को मेरे हृदय से दूर कर दो, भविष्य में मेरा जन्म और मरण न हो।

हे करुणानिधे दयानिधे–दया की सागर अत्यन्त दयावती मे (मम) दरिद्रतां गरीबी को 'दलय' नाश कर दो यतः तुम करुणानिधे हो अतः मेरे ऊपर किञ्चिन्मात्र दया दिखाकर मेरी दरिद्रता का नाश कर दो, अतएव शूद्रक कवि ने लिखा है :—

दारिद्र्यत्मरणाद्वा मरणं मम रोचते न दारिद्र्यम् ।
अल्पक्लेशं मरणं दारिद्र्यमनन्तकं दुःखम् ।।इति ।।

अर्थात् गरीबी में जीवन बिताने से मरना अच्छा है। मरने में अल्पकालिक दुख होता है और गरीबी में यावज्जीवन दुःख भोगना पड़ता है तथा च दारिद्रयात् ह्रियमेति ह्री परिगतो सत्वात्परिभ्रश्यते अहो निर्धनता सर्वापदामास्पदम् ।। इत्यादि ।

हे त्रिपुरसुन्दरी ! त्रिपुरस्य परशिवस्य सुन्दरी भार्या त्रिपुरसुन्दरी, पराशिव की स्त्री "सुन्दरी रमणीरामा" अमरकोश, त्रिपुर शब्द का निर्वचन पाशचिन्तन प्रभाव वर्णन ४३वें पद्य में किया गया है। 'सर्वज्ञतां देहि' सर्व जानातीति सर्वज्ञः तस्य भावः सत्तायां भाववाचक संज्ञा, सब कुछ जानने की शक्ति 'देहि' मुझे प्रदान करो अर्थात् मुझे सर्वज्ञ बना दो। श्री शिवे ! हे श्री शिवे ! श्री युक्ता शिवा श्रीशिवा सम्बोधन में श्री शिवे। हे अम्बिके–'शिवा भवानी रुद्राणी चण्डिकाम्बिका' अमरकोश अथवा श्री बीज से युक्त शिवा

पञ्चदशी षोडशी महात्रिपुरसुन्दरी बन जाती है जिसको श्री विद्या भी कहते हैं अतएव लिखा है :-

कामराजाख्य मन्त्रान्ते श्रीबीजेन समन्विता ।
षोऽशाक्षरविद्येयं श्रीविद्येति प्रकीर्तिता ॥

'विदारित जरामृति' विदारिते जरामृती येन तत् चरण पद्मयुग्मं का विशेषण है। जरा वृद्धावस्था मृति मरण इन दोनों का उच्छेदक, चरणपद्मयुग्मं' चरणकमलों (कर्मधारय समास) के युग्मं द्वन्द्व को अर्थात् दोनों चरणों के युग्म (जोड़ी) को 'विधेहि' विशेषता से ध्यान योग के गम्य करो-अर्थात् तुम्हारे चरणों का ध्यान मेरे मन में सर्बदा बना रहे।

सरलार्थ :—

संक्षेप में इस पद्य का सरल अर्थ—इस प्रकार होगा :—

हे परदेवते, करुणानिधे, हे श्री शिवे महात्रिपुरसुन्दरी तुम प्रसन्न होकर मेरे हृदय में स्थित जन्ममरण (आवागमन) के भय को दूर करो, मेरी निर्धनता का विनाश करो, तथा मुझे सर्वज्ञ बनाकर जरा और मरण के विनाशक अपने चरण कमलों को मेरे हृदय में बरसाने की कृपा करो जिससे मैं उनका सर्वदा ध्यान करता रहूं।

टिप्पणी :—

इस पद्य में चार सम्बोधनों से चार वरदान मांगे गये हैं—परदेवते से भय का विनाश, हे करुणानिधे से दारिद्रय का दूरी करण, त्रिपुर सुन्दरी ! से सर्वज्ञता का प्रदान और श्री शिवे ! से चरण कमलों का ध्यान गम्य होना।

अब श्री त्रिपुरसुन्दरी की महिम्नस्तुति का फल दिखलाते हैं :—

इति त्रिपुरसुन्दरीस्तुतिमिमां पठेद्यसुधीः
स सर्वदुरिताटवीपटलचण्डदावानलः ।
भवेन्मनसि वाञ्छितं प्रचुरसिद्धि ऋद्धिर्भवे-
दनेकविधसम्पदां पदमनन्यतुल्यो भवेत्॥५१॥

व्याख्या :—

यः सुधीः सुष्ठु धी (र्बुद्धिर्यस्य स) विद्वान् दृढ़ निश्चय से इति पूर्वोक्त प्रकार से की गई 'इमां' मेरी बनाई हुई, 'त्रिपुर सुन्दरी स्तुति' त्रिपुरसुन्दरी महिम्न स्तुति को 'पठेत्' प्रतिदिन इसका पाठ करे अर्थात् जो साधक दृढ़ निश्चय से इसका पाठ करता है 'स' पाठ करने वाला वह साधक 'सर्वदुरिताटवी पटल–चण्ड दावानल :–' सर्व सब (कायिक वाचिक और मानसिक) दुरित अटवी पाप रूपी जंगल के लिये दावानल (वन में लगने वाली आग) स्वरूप होता है 'दव दावौ वनारण्य बह्नी "अमरकोष ।" "पापं दुरित दुष्कृतं" अमरकोश । अर्थात् उनके पाप इस प्रकार से भस्म हो जाते है जैसे अग्नि (वन की आग) सम्पूर्ण वन को भस्मसात् कर देती है और उसका मनसि वाञ्छितं मनोरथ 'वाञ्छा-लिप्सा मनोरथः कामोऽभिलाषः' अमरकोशः पूर्ण हो जाता है, तथा प्रचुर सिद्धिः ऋद्धिःभवेत् प्रचुर बहुत–अर्थात् आठों अणिमा महिमा आदि सिद्धियों और अन्य प्रकार की धन–धान्यादियों की समृद्धि से पूर्ण हो जाता है इतना ही नहीं वह अनन्यतुल्य जिसकी समानता कोई भी न कर सके अनेक विध सम्पदा अनेक प्रकार की सम्पत्तियों का पदं स्थान 'पदं

व्यवसित त्राण स्थान लक्ष्मांध्रि वस्तुषु" (अमरकोश) बन जाता है अर्थात् इस स्तुति का प्रत्यह पाठ करने वाला तुम्हारा भक्त सर्व प्रकार से परिपूर्ण हो जाता है। अतएव घट स्तव में कहा है :-

किं किं दुःखं दनुजदलिनि क्षीयते न स्मृतायां
काका कीर्तिः कुलकमलिनि ? ख्याप्यते ना स्तुतायाम्
काका सिद्धिः सुखरनुते प्राप्यते नार्चितायाम्
कंकं योगं त्वयि न चिनुते चित्तमालम्बितायाम् ।।

अर्थात् हे त्रिपुरसुन्दरि तुम्हारे मन्त्र के जप करने से कौन सा दुःख (पाप) क्षीण (नष्ट) नहीं हो जाता—और तुम्हारी स्तुति करने से कीर्ति विस्तृत हो जाती है, तुम्हारे पूजन से वह कौन सी सिद्धि है जो प्राप्त नहीं होती और चित्त में तुम्हारा आलम्बन करने से वह कौनसा योग है जिसे तुम्हारा साधक ग्रहण नहीं कर सकता। अर्थात् तुम्हारी उपासना से—तुम्हारा साधक सब करगत कर सकता है। इस पद्य में पृथ्वी छन्द है तथा रूपक और अनुप्रास अलंकार यथाक्रम है।

संक्षिप्तार्थ

इस पद्य का सरल अर्थ निम्न प्रकार से किया जायगा :—

जो विद्वान साधक पूर्वोक्त त्रिपुरसुन्दरी की इस स्तुति का प्रतिदिन पाठ करता है उसके पाप इस प्रकार से भस्मीभूत हो जाते हैं जैसे कि प्रचण्ड दावाग्नि की ज्वालायें वन को भस्म कर देती हैं। उसकी अभिलाषायें परिपूर्ण हो जाती हैं और उसके पास सब प्रकार की ऋद्धि (समृद्धि) और सद्विद्या आ जाती है। इतना ही नहीं वह अनन्य तुल्य (अनुपम) होकर विविध सम्पत्तियों का निवास बन जाता है, अर्थात् उसके घर में सब ऋद्धि और सम्पत्ति एकत्रित हो जाती है।

महामुनि दुर्वासा श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी माता से अपनी अभिलाषाओं की पूर्ति का निवेदन करते हैं :—

संगीतं सरसं विचित्रकवितामाम्नायवाक्यस्फूर्ति
व्याख्यानं हृदि तावकीनचरणद्वन्द्वं चसर्वज्ञताम् ।
श्रद्धां कर्मणि शाम्भवेति विपुलं श्रीजृम्भणं मन्दिरे
सौन्दर्यं वपुषि प्रदेहि जगतामम्बेश्वरि श्री शिवे ।।

व्याख्या—

हे जगतां अम्ब ! तीनों लोकों (स्वर्ग, मर्त्य, पाताल) की अथवा चौदह भुवनों की अम्बामाता सम्बोधन में अम्ब हे ईश्वरि ! समर्थ शालिनि, अथवा जगतां ईश्वरी सब लोकों की स्वामिनी "स्वामी त्वीश्वरः पतिरीशिता" अमरकोश । हे श्री शिवेः । हे मङ्गलकारिणि, अथवा मङ्गलस्वरूपे "शिवेति मङ्गलं नाम" अथवा हे महात्रिपुरसुन्दरि–शिवा त्रिपुर सुन्दरी पञ्चदशी श्रीयुक्ता शिवा श्रीशिवा श्रीबीज संयुक्त पञ्चदशी अर्थात षोडशी । हे शिवे ! हे महात्रिपुरसुन्दरी ! 'मह्यं' मेरे लिये 'सरस' रस से पूर्ण [रसीला] 'सङ्गीत' तीनों गीत वाद्य और नृत्य, 'गीतं वाद्यं च नृत्यं च संगीतकमनुत्रयम्' अर्थात् तीनों का नाम सङ्गीत है। मनुष्य को सङ्गीत जानना अत्यन्त आवश्यक है, अतएव किसी ने कहा है—'साहित्यसङ्गीतकला-विहीनः साक्षात्पशुपुच्छ विषाण हीनः' इति । अर्थात् मनुष्य

बिना संगीत और साहित्य के सींग और पूंछ से रहित पशु (जानवर) है अतः मुनि कहते हैं मेरा संगीत ऐसा हो कि सुनने वाला आनन्द सागर में निमग्न हो जावे। 'बिचित्र'-कविता' में वैचित्र्य पैदा करने वाली शक्ति को प्रदान कर अतएव कहा है-

"किं कवे स्तस्य काव्येन किं काण्डेन धनुष्मतः।
यस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिरः ॥ इति ॥

अर्थात् वह कविता नहीं कही जाती जिसके सुनने से सुनने वाले का सिर अपने आप आनन्द से न घूमने लगे (अर्थात् झूमने लगे) तथा शिकारी का तीर भी ऐसा हो कि लक्ष्य के लगते ही चक्कर खाकर गिर पड़े। तथा 'आम्नाय वाक्य स्मृति देहि' सर्वदैव मेरे हृदय में आम्नाय वाक्यों वेद के वाक्यों की स्मृति (स्मरण यादगार) बनी रहे। आम्नाय-वेद "श्रुतिः स्त्री वेद आम्नायः" अमरकोश। सामाम्नायः समाख्यातः स च व्याख्यातव्यः" यास्काचार्य। "सत्यंवद, धर्मंचर, स्वाध्यायान्माप्रमद, मातृदेवो भव, पितृदेवो भव" आचार्य देवो भव" इत्यादि वेदवाक्यों को न भूलूं। अथवा आम्नायानां-षडाम्नायानां छहों आम्नायों-पूर्वाम्नाय, पश्चिमाम्नाय, दक्षिणाम्नाय, उत्तराम्नाय अनुत्तराम्नाय तथा ऊर्द्धाम्नायों के वाक्यों को अर्थात् महावाक्यों को "प्रज्ञानंब्रह्म, अहंब्रह्मास्मि, तत्वमसि अयमात्माब्रह्म, ॐ आत्ममेवेदंसर्वं, ॐ ब्रह्मैवेदं सर्वं, ॐ शिवोहं, ॐ ब्रह्मैवाहमस्मि इत्यादि वाक्यों की तथा आम्नायों द्वारा उपासना के महिमा वाक्यों की

स्मृति को प्रदान कर अर्थात् उन्हें न भूलूं । तथा दुर्वासामुनि श्री विद्योपासक हैं और श्री विद्या की उपासना ऊर्द्धाम्नाय से होती है। क्रमशः पूर्व पश्चिम दक्षिणाम्नायादि आम्नायों की समष्टि अन्त में ऊर्ध्वाम्नाय में होती है अतः ऊर्ध्वाम्नाय का महत्व बहुत बड़ा है, अतएव कहा है–ऊर्ध्वत्वात् सर्वधर्माणा–मूर्ध्वाम्नायः प्रशस्यते । ऊर्ध्वंनयत्यधस्तंच ऊर्ध्वाम्नाय इति–स्मृतः तथा व्याख्यानं देहि अर्थात् शिष्यों के मध्य में अथवा जनता के मध्य में तुम्हारे विषय में अथवा दूसरे किसी भी विषय में व्याख्यान शक्ति (वक्तृत्व शक्ति) को प्रदान कर, तथा 'हृदि' अर्थात् मेरे हृदय में 'तावकीन चरणद्वन्दं' तुम्हारे चरण युगल का ध्यान बराबर बना रहे, अर्थात् चरण मेरे हृदय से कभी दूर न हों च और 'सर्वज्ञतां' (सर्वं जानाति सर्वज्ञः तस्य भावस्तत्ता) अर्थात् मैं सब बातों का ज्ञाता हो जाऊँ कोई भी विषय शेष न रहे । विशेषज्ञता को प्रदान कर अर्थात् भूत भविष्यत् और वर्तमान की सब बातों का ज्ञाता बन जाऊँ। शाम्भवे कर्मणि श्रद्धां, भगवान शम्भु के मुखारविन्दु से, तथा भगवती शाम्भवी के मुख कमल से विनिर्गत तन्त्र और मन्त्र शास्त्र से प्रतिपादित कर्मों के विधान में मेरी अटूट श्रद्धा प्रतिदिन बढ़ती रहे । श्रद्धा के बिना किया हुआ कार्य निष्फल होता है अतएव श्री भगवान् कृष्ण गीता में कहते हैं:–

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतञ्चयत् ।
असदित्युच्यते पार्थ नच तत्प्रेत्य नो इह
तथाच-अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।४।४०।।

अर्थात बिना श्रद्धा के हवन, दान तप जो कुछ किया जाता है सब असत् (बुरा है) 'मन्दिर' मेरे हृदय में 'अति विपुलं' अत्यन्त विशाल "बिशाल विपुलं महत्" अमरकोश। 'श्री जृम्भणं' श्रियो जृम्भणं लक्ष्मी और सम्पत्ति तथा शोभा के विस्तार (फैलाव) को अर्थात् लक्ष्मी सम्पत्ति तथा शोभा की अत्यन्त वृद्धि होवे। तथा 'वपुसि' शरीर में (सर्वाङ्ग में) सौन्दर्य रमणीयता को अर्थात् निरति शय रमणीयता को, सुन्दरता को देहि बढ़ावे।

संक्षेप में इस पद्य का अर्थ निम्न प्रकार का होगा—हे जगन्माता परमेश्वरी हे मङ्गलस्वरूपिणी–तुम्हारी कृपा से मेरी संगीत विद्या सरस (रसीली) हो, तथा मेरी कवित्व शक्ति विचित्रता से परिपूर्ण हो। मेरे मन में सर्वदा आम्नाय वचनों की स्मृति बनी रहे अर्थात् मैं संसार में प्रत्येक विषय का व्याख्याता बनूँ और तुम्हारे चरण कमलों का ध्यान मेरे अपने हृदय सर्वदा करता रहूं तुम्हारी कृपा से मुझे त्रिकालज्ञता और सर्व शास्त्रज्ञता प्राप्त हो, निखिल शाम्भव—(शाक्त) कर्म सम्पादन में मेरी अटूट श्रद्धा बनी रहे तथा मेरे निवास स्थान में लक्ष्मी सम्पत्ति और शोभा अधिकता से विद्यमान रहे और मेरे सर्वाङ्गों में सुन्दरता सर्वदा विराजती रहे।

: ५३ :

अब महामुनि दुर्वासा इस महिम्न स्तोत्र के प्रतिदिन पाठ कराने का फल दो पद्यों में एक साथ दर्शाते हैं :—

पृथ्वीपाल-प्रकटमुकुटस्त्रग्रजो रञ्जिताङ्घ्रि
विद्वत्पूजास्तुतिशतसमाराधितो बाधितारिः ।
विद्याः सर्वाः कलयति हृदा व्याकरोति प्रवाचा
लोकाश्चर्यैर्नवनवपदैरिन्दुबिम्बप्रकाशैः ।।

: ५४ :

भूष्यं वैदुष्यमुद्यद्दिनकरकिरणाकारमाकारतेजः
सुज्ञानं सूरिमार्गं निगमनिगमनं दुर्गमं योगमार्गम् ।
आयुष्यं ब्रह्मपोष्यं हरगिरिविशदां कीर्तिमभ्येत्यभूमौ,
देहान्ते ब्रह्मपारं परतरचरणाकारमभ्येतिविद्वान् ।।
५४।।

(युग्मक)

व्याख्या :—

हे माता त्रिपुर सुन्दरि तुम्हारा विद्वान साधक पृथ्वीपाल प्रकट इत्यादि पृथ्वीपालों के राजाओं के शिरों में प्रकट प्रत्यक्ष देखे जाने वाले स्वर्णनिर्मित मुकुटों में लगी हुई (टँकी हुई) स्रजों की पुष्पमालाओं के रजों से परागों से रञ्जितांगि-रञ्जित चरणों वाले विद्वानों द्वारा समर्चित

(पूजित) तथा स्तुति शत अनेक प्रकार की प्रशंसाओं द्वारा आराधित प्रार्थित (दूसरे पद्य में उल्लिखित विद्वान् साधक का विशेषण है) वाधितारिः जिसके शत्रु तुम्हारे प्रभाव से स्वयमेव वाधित होकर शान्त हो गये हैं तथा हृदा अपने हृदय में सर्वा विद्याः सब प्रकार की अशेष विद्याओं को अर्थात चतुर्दश (१४) विद्याओं को कलयति प्राप्त कर लेता है और उनको प्राप्त कर प्रवाचा अपनी प्रकृष्ट वाक-शक्ति द्वारा (वाणी द्वारा) अर्थात् अपनी वाणी से विनिर्गत [निकले हुए] नव नवपदैः नये नये नये पदों से अर्थात् पुनः पुनः पुनरुक्ति से रहित पदों से व्याकरोति उनकी व्याख्या करता है।

तथा लोकाश्चर्य कारिणी नूतन पदावलि से अलंकृत वैदुष्यं पाण्डित्यको, उद्यदिनकर किरणा-इत्यादि, प्रात:कालीन सूर्य के समान तेजस्वी स्वरूप को, भूरिमार्ग सुज्ञानं सब प्रकार के शास्त्र ज्ञान को और निगम निगमनं-निगमानां वेदानां निगमनं अर्थात् षडंग, वेदों के [शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द ये वेद के षडङ्ग हैं] [तथा ऋग्वेद यजुर्वेद, सामवेद और अथर्व ४ वेद हैं] व्याख्यान को, दुर्गमं योगमार्ग दुर्गम अत्यन्त कठिन अर्थात् दुष्प्राय योगशास्त्र ज्ञान को ब्रह्मपोष्यं, आयुष्यं, ब्रह्माजी की कल्पान्त पर्यन्त रहने वाली आयु के समान आयु को [अर्थात् चिरञ्जीवित्व को] तथा हर गिरि विशदां महादेव के पर्वत कैलास के समान विशुदां शुभ्रवर्ण-उज्ज्वल कीर्ति को यश को "मालिन्यं व्योम्नि पापे, यशसि धवलता वर्ण्यते हास कीर्त्यो" इत्यादि कवि समय

प्रसिद्धि के अनुसार कीर्ति का वर्णन शुभ्र किया गया है। अभ्येत्य प्राप्त कर देहान्ते शरीर के अन्त नाश होने पर अर्थात मरणोपरान्त परतर चरणाकारं परतरा के परब्रह्म स्वरूपिणी श्री महात्रिपुरसुन्दरी के चरणाकारं अर्थात् निर्वाण चरणाकार ब्रह्मपारं अपार ब्रह्मस्वरूप को अभ्येति प्राप्त कर लेता है। पुनः जन्म नहीं लेता है न पुनरावर्तते।

टीकाकार भी मन्त्र शास्त्र के पूर्णतया ज्ञाता तथा श्रेष्ठ श्री विद्योपासक हैं अतएव उन्होंने "चरणाकार" का अर्थ निर्वाणंचरणरूपं संकेत से लिखा है।

पूर्णाभिषेक होने पर चरण चतुष्टय की भी दीक्षा होती है। चरण चतुष्टय के चार चरण निम्नलिखित हैं :—

रक्तचरण, शुक्लचरण, मिश्रचरण और निर्वाण चरण। ये सब बातें गुरु वक्तृगम्य हैं।

तथा प्रकाशचरण, विमर्श चरण, प्रकाश विमर्श चरण और निर्वाण चरण ये शम्भु चरण चतुष्टय कहे जाते हैं।

इन दोनों पद्यों का संक्षिप्तार्थ नीचे लिखा जाता है :—

हे मातः त्रिपुरिसुन्दरि ! तुम्हारा विद्वान साधक राजाओं के स्वर्ण मुकुटों पर लटके हुये फूलों के पराग से रञ्जित चरण वाले बड़े बड़े विद्वान पुरुष तुम्हारे भक्त शिरोमणि साधक (उपासक) की स्तुति करते हैं, तथा उसका शत्रु समूह स्वयमेव वाधित होकर शान्त हो जाता है, इस तुम्हारे महिम्न स्त्रोत के पाठ करने से तुम्हारे उपासक के हृदय में सब प्रकार की विद्यायें स्वयं निवास करने लगती हैं, जिनके द्वारा वह

(तुम्हारा साधक) चन्द्रमा के समान आह्लादक और लोकाश्चर्यकारी वचनों से उनकी [विद्याओं की] व्याख्या करता है (श्रोताओं को समझाता है) वह विद्वता को तथा प्रातःकालीन सूर्य के समान स्वरूप को, अशेषशास्त्र ज्ञान को वेदों के व्याख्यान और दुर्गम (कठिन) योग मार्ग को प्राप्त कर तथा ब्रह्मा जी के समान कल्पान्त पर्यन्त रहने से [चिरंजीवी बनकर] कैलाश पर्वत तुल्य स्वच्छ निर्मल कीर्ति-प्राप्ति के अन्त समय में [देहान्त समय में] तुम्हारे निर्वाण चरणस्वरूप परब्रह्म में लीन हो जाता है। अर्थात मोक्ष प्राप्ति से पुनः इस संसार में जन्म नहीं लेता है।

अन्त में महामुनि दुर्वासा स्वरचित त्रिपुरा महिम्न स्तोत्र अपने शुभ नाम का निबन्ध करते हैं।

वसन्त तिलका छन्द

दुर्वाससाविदिततत्त्वमुनीश्वरेण
विद्याकलां युवतिमन्मथ मूर्तिनैतत् ।
स्तोत्रं व्यधायि रुचिरं त्रिपुराम्बिकाया
वेदागमोक्त पटलैर्विदितैकमूर्तिः ॥५५॥

व्याख्या :—

विद्या-कला-युवति-मन्मथ-मूर्तिना द्या विचतुर्दश विद्या (१४ विद्यायें) कला चतुष्षष्टि कला (६४ प्रकार की कलायें) विद्या और कला रूपी युवतियो के लिये मन्मथ मूर्ति कामदेव की मूर्ति स्वरूप अर्थात् कामदेव स्वरूप "मदनो मन्मथोमारः कामः पञ्चशरः" अमरकोश। रूपकालङ्कार। विदिततत्त्व-मुनीश्वरेण विदितं तत्त्वं येन स चासौ मुनीश्वरः कर्मधारय समास, अष्टोत्तर शत उपनिषदों के तत्त्व (सार) के ज्ञाता मुनीश्वरमहायोगीश्वरदुर्वाससा दुष्टं दुःखदं शण सूत्र निर्मित वल्कल व्याघ्र चर्म गैरिक रञ्जित वस्त्रादिकं वासो यस्य तेन अर्थात् शणसूत्र वल्कल (वृक्षों की छाल) वाघ की खाल

और गेरु से जिसके वस्त्र रंगे हुये हैं अतएव दुखद वस्त्र धारण करने वाले दुर्वासा मुनीश्वर (योगीन्द्र) ने वेदागमोक्त पटलै विदितैक मूर्तिः वेदोक्त चारों वेदों में कहे गये तथा आगमोक्त आगम शास्त्र (मन्त्र तन्त्र शास्त्र) द्वारा कथित पटलों से स्वरूप निरूपक ग्रन्थों में विदिता ज्ञाता जानी गयी एका मूर्ति [स्वरूप] जिसकी ऐसी त्रिपुराम्बिकायाः त्रिपुरा-चासौ अम्बिका तस्याः श्री माता महात्रिपुरसुन्दरी की [त्रिपुरा और अम्बिका शब्दों का निर्वचन पहले किया जा चुका है] रुचिरं प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला एतत् स्तोत्रं यह त्रिपुरा महिम्न नामक स्तोत्र [स्तुति] व्यधायि विरचा है।

आगम–शब्द में आ, ग, और म-ये तीन अक्षर हैं इनसे आगम शास्त्र की परिभाषा बनी हैं–आसे "आगतं शिववक्त्रे-भ्यो ग–से–गतं च गिरिजाश्रुतौ, म–से मतञ्च, वासुदेवस्य तस्मादागममुच्यते"। अर्थात् भगवान् शिव के पञ्चमुखों द्वारा कहा गया और गिरिजा पार्वती जी के कानों में गया, अर्थात् उन्होंने सुना तथा वासुदेव भगवान् ने शिवजी के कथन का [मत] अनुमोदन किया इस कारण आगम शास्त्र बना। आगम शास्त्र कुछ तो शिवजी ने पार्वती जी से कहा और कुछ पार्वती जी ने शिवजी को सुनाया है।

इस पद्य का अर्थ संक्षेप में नीचे दिया जाता है।

ओं एक सौ आठ उपनिषदों के तत्व ज्ञाता और सम्पूर्ण विद्या तथा चौसठ कलाओं के मथन करने वाले योगीश्वर

दुर्वासा ने चारों वेद और चौसठ तत्वों तथा पटलों द्वारा निरूपित श्री महात्रिपुरसुन्दरी के प्रीतिकर इस त्रिपुरा महिम्न स्तोत्र की रचना की है।

टिप्पणी --

चतुर्दशविद्या :—चार वेद—ऋक्, यजुः, साम और अथर्वण वेद। चार उपवेद—आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्व वेद और स्थापत्य। षट्शास्त्र, अथवा षड्दर्शन—योगशास्त्र, सांख्य शास्त्र, न्यायशास्त्र, वैशेषिक दर्शन, वेदान्त दर्शन, और मीमांसा शास्त्र।

मीमांसा के दो भेद हैं;—ज्ञानकाण्ड और कर्मकाण्ड।

वेद के छः अङ्ग हैं :—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द।

अब महामुनि दुर्वासा स्वविरचित-त्रिपुरा महिम्न स्तोत्र की समाप्ति करते हैं :—

सदसदनुग्रहनिग्रह गृहीत मुनि विग्रहो भगवान् ।
सर्वासामुपनिषदां दुर्वासा जयति देशिकः प्रथमः ।।५६।।

व्याख्या :—

सतां अनुग्रहार्थं असतां च निग्रहार्थं गृहीतः मुनिविग्रहो येन स अर्थात सज्जनों के ऊपर उपदेश द्वारा अनुग्रह कृपा करने के लिये तथा दुर्जनों के निग्रह के लिये अर्थात् दुष्ट पुरुषों को असत्कार्यों से रोकने के हेतु मानव शरीर में मुनिरूप धारण करने वाले सर्वासां उपनिषदां चारों वेदों के अन्तर्गत सम्पूर्ण (अखिल) उपनिषदों के रहस्यों (धर्मे रहस्यमुपनिषद) अमरकोश । यद्यपि उपनिषद् बहुत हैं अर्थात् एक सौ आठ हैं तथापि उनमें अष्टाविंशति (अट्ठाईस) उपनिषद् मुख्य हैं, उपनिषदों पर भगवान शङ्कराचार्य कृत भाष्य (व्याख्या) संस्कृत में विद्यमान है । वर्तमान में—(संवत् २०१६ में) श्री पीताम्बरा पीठस्थ राष्ट्रगुरु श्री १००८ स्वामी जी ने 'पञ्चोपनिषद्' नाम की पुस्तक छपवाई है जिसमें ईशावास्य–केन–कठमुण्डक और माण्डूक्य इन पांच उपनिषदों की व्याख्या बड़ी सरल संस्कृत भाषा में की है । और इस व्याख्या में यत्र तत्र आगमार्थानुसार शाक्तमत का भी प्रतिपादन है ।

जिसका (शाक्तमतका) कि अद्यावधि किसी आचार्य ने अपने भाष्यों में उल्लेख नहीं किया । अतः शाक्त समुदाय को इस पुस्तक का अवलोकन करना नितान्त आवश्यक है । अस्तु प्रथमः देशिकः आद्य आचार्य भगवान महानुभाव दुर्वासा मुनीश्वर जयति विजयते अर्थात् वे सर्वोत्कर्ष से युक्त हैं ।

सरलार्थ —

इस पद्य का सरल अर्थ निम्नलिखित होगा :—

सत्पुरुषों को अपना कर उनके ऊपर कृपा करने के लिये तथा दुर्जन मनुजों के निग्रहार्थ [दण्ड विधानार्थ] मानव शरीर धारण कर योगीश्वर स्वरूप चारों वेदों के रहस्य प्रतिपादक– समस्त एक सौ आठ १०८ उपनिषद् ग्रन्थों के तत्व ज्ञाता प्रथम आचार्य महामुनि दुर्वासा की जय हो ।

अभ्युपत्तिः अनुग्रहः विरुद्धो निग्रहः । निग्रेह स्तद्विद्धः स्यात् धर्मे रहस्युपनिषद्, धर्मे रहसि वेदान्ते च–उपनिषद्– इति सर्वत्रामरः ।

'पञ्चोपनिषद्' इसके भाष्य के विषय में स्व० महामहो- पाध्याय पं० गिरधर शर्मा चतुर्वेदी जी ने लिखा है—आगम प्रतिपादित शक्तितत्त्व जिसका श्वेताश्वतर आदि उपनिषदों में संकेत है और पुराणों में विस्तृत विवरण है, उसके प्रतिपादन करने वाले अर्थों का सब उपनिषदों में आज तक किसी ने विवरण नहीं किया । श्री शङ्कराचार्य ने यद्यपि अपने आगम परक ग्रन्थ में शक्ति तत्त्व का विस्तृत विवरण लिखा है परन्तु

उपनिषदों के भाष्य में—इस पर विस्तृत प्रकाश नहीं डाला। इस न्यूनता को पूर्ण करने के लिये ही श्री योगिराज वनखण्डि महाराज का यह सफ़ल उद्योग हुआ है।

यदि एवं अन्य उपनिषदों पर भी आप भाष्य लिखने की कृपा करें, तो जिज्ञासु जनता का बहुत वड़ा उपकार हो और आगम प्रतिपादित शक्ति तत्व को जो आजकल के विज्ञ समाज ने बहुत कुछ विस्मृत सा कर दिया है, उसका भी सप्रमाण रहस्य प्रकाश में आ सके।

अनया हिन्दी भाषा व्याख्यया विश्वरूपा श्रीमाता श्री महात्रिपुरसुन्दरी प्रसीदतु।

भाद्रपद कृष्ण द्वादशी शुक्रवार
सम्बत् २०२४
१-९-६७

पीताम्बरा पीठ संस्कृत परिषद, दतिया द्वारा प्रकाशित ग्रन्थों का

सूची - पत्र

क्र	नाम		पृष्ठ	मूल्य
१.	श्री बगलामुखी रहस्यम्	संस्कृत	४२०	१८-००
२.	पुरश्चरण पद्धति	हिन्दी	६०	३-००
३.	अथर्ववेदीय ज्योतिषम्	हिन्दी टीकासहित	६४	यंत्रस्थ
४.	नारदीय शिक्षा	संस्कृत टीकासहित	८२	१-५०
५.	शरभ तन्त्रम्	संस्कृत	२००	५-००
६.	स्वरोदय विज्ञान	हिन्दी	११२	४-००
७.	श्री मातृकाचक्र विवेक	संस्कृत	४००	१५-००
८.	कामकला विलास	संस्कृत टीकासहित	८५	५-००
९.	महाविद्या चतुष्टयम्	संस्कृत	१६५	८-००
१०.	तान्त्रिक पञ्चाङ्ग			७-००
११	वैदिक उपदेश	हिन्दी	२५९	१०-००
१२.	पञ्चोपनिषद्	सं०	१४२	१0-00
१३.	श्री विद्या रहस्य(चिद्-विलास)	संस्कृत-हिन्दी		१-५०
१४.	श्री विद्या रहस्य(चिद्-विलास)	संस्कृत-अंग्रेजी सजिल्द		७-००
१५.	श्री विद्या रहस्य(चिद्-विलास)	संस्कृत-अंग्रेजी अजिल्द		३-००
१६.	दर्शन-शास्त्र-संग्रह	हिन्दी	१८५	यन्त्रस्थ
१७.	वैदिक उपदेश (अंग्रेजी अनुवाद सहित)			१५-००
१८.	पञ्चोपनिषद्	संस्कृत भाष्य सहित	१४२	१०-००
१९.	प्रश्नोपनिषद्	,,		१-००
२०.	घेरण्ड-संहिता	भाष्यानुवाद	९५	५-००
२१.	योग-विज्ञान भाग १	हिन्दी	४०६	१0-00
२२.	योग-विज्ञान भाग २	,,	२५५	१0-00
२३.	योगदर्शन	संस्कृत	४0	२-५0
२४.	शिवसूत्रं-भक्तिसूत्रञ्च	,,	३४	यन्त्रस्थ
२५.	वातुलनाथ सूत्र	,,		२-00

२६. श्री महात्रिपुरसुन्दरी पूजा पद्धति	संस्कृत	१००	१०-००
२७. सुभगोदय	संस्कृत-हिन्दी-टीका		यन्त्रस्थ
२८. त्रिपुरा महिम्न स्तोत्रम्	संस्कृत	२०८	९-००
२९. लेख-संग्रह	हिन्दी	२१७	१२-००
३०. सौन्दर्य लहरी	संस्कृत	१३३	७-००
३१. सौन्दर्य लहरी	हिन्दी-टीका	५३	१-००
३२. श्री विद्यारत्न सूत्रम्	संस्कृत	४४	३-००
३३. वेदान्त प्रबोध	संस्कृत-हिन्दी	९६	२-००
३४. ईश्वर-गीता	,,	११६	६-००
३५. सप्तविंशति रहस्यम्	संस्कृत	१००	७-००
३६. सिद्धान्त रहस्य	हिन्दी	८०	२-५0
३७. ताराकर्पूर राजस्तोत्रम्	संस्कृत	४०	१-५०
३८. छिन्नमस्ता नित्यार्चन	संस्कृत-हिन्दी	९९	६-00
३९. रेणुकातंत्रम्	संस्कृत	१०५	६-००
४०. पुरश्चरणम्	हिन्दी	५६	१-००
४१. पंचस्तवी	संस्कृत	५०	0-५०
४२. पराप्रवेशिका	संस्कृत-हिन्दी	२0	०-७५
४३. माण्डूक्योपनिषद्	,,	५६	१-७५
४४. केनोपनिषद	,,	६८	२-००
४५. ईशावास्योपनिषद्	,,	८६	३-५0
४६. कठोपनिषद्	,,		५-५०
४७ मुण्डकोपनिषद्	,,	,,	६-००
४८ सिद्धान्त रहस्य	अंग्रेजी	,,	५-00
४९. शाक्त सौरभ (ज्ञान खण्ड) I, II	हिन्दी	,,	७एवं १२
५०. ललिता सहस्रनाम (भास्कर विलास)	संस्कृत	,,	३२-00
५१. परमार्थसार: (टीका सहित) (श्रीमदभिनवगुप्ताचार्यविरचित:)		,,	यन्त्रस्थ
५२. श्रीस्वामी स्मृति ग्रन्थ			१०१-00
५३. भैरव विज्ञान	हिन्दी		९-00
५४ भैरव सर्वस्व	भाषा-टीका		२१-०0
५५. हनुमत उपासना			१५-00
५६ गुरु नवरत्नमाला			५-00
५७. लघुस्तव राज			१0-00
५८. गुरु तत्व एवं पादुका पंचक			२0-00
५९. निगमागम समन्वय			३0-00
६0. सिद्धान्त रहस्य संस्कृत			३-00

मुद्रणालय [illegible]
श्रीशंकर प्रेस
[illegible] [illegible]सी